वार्षिकांक 5

वर्ष 2012

# कृषि किरण

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल – 132 001 भारत

डा. एस.के. गुप्ता, डा. आर.एस. त्रिपाठी एवं श्रीमती रश्मि शर्मा
भा.कृ.अ.प. का गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी कृषि पुरस्कार ग्रहण करते हुए

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी कृषि पत्रिका पुरस्कार

प्रशस्ति पत्र

वर्ष 2009 के दौरान
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल
द्वारा प्रकाशित हिन्दी पत्रिका 'कृषि किरण' को
द्वितीय पुरस्कार
से सम्मानित किया जाता है।

नई दिल्ली
16 जुलाई, 2010

सचिव

महानिदेशक

# कृषि किरण

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल – 132 001 भारत

# संपादक मण्डल


| | | |
|---|---|---|
| **संरक्षक एवं अध्यक्ष** | : | **डा॰ दिनेश कुमार शर्मा (निदेशक)** |
| **संपादक** | : | **डा॰ राजेन्द्र कुमार यादव (प्रधान वैज्ञानिक)** |
| | : | **डा॰ रामेश्वर लाल मीणा (वरिष्ठ वैज्ञानिक)** |
| **सदस्य** | : | **डा॰ सुनील कुमार त्यागी** |
| | | **डा॰ रणधीर सिंह** |
| | | **श्री मदन सिंह** |


***आवश्यक नोट***

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आँकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।


**प्रकाशक:**

निदेशक, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132 001, भारत

दूरभाष : +91-184-2290501, फैक्स : +91-184-2290480, 2292489

ई–मेल : director@cssri.ernet.in; वेबसाईट : www.cssri.org

**मुद्रक:**

इन्टेक प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स

343, प्रथम तल, मुगल कॅनाल, करनाल 132 001

दूरभाष: +91-184-3292951, 4043541

ई–मेल : jobs.ipp@gmail.com; वेबसाईट : www.intechonweb.com

# प्राक्कथन

भारत के प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, पानी, जलवायु तथा जैव विविधता आदि की गुणवत्ता दिनोंदिन बहुत तेजी से घटती जा रही है। संसाधनों का अत्यधिक दोहन एवं अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियाँ इसके प्रमुख कारण हैं। देश की खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा की स्थिरता के लिए कृषि अनुसंधान तथा विकास के हमारे वर्तमान दृष्टिकोण में एक व्यापक बदलाव की जरूरत है। यद्यपि पूर्व में सिंचित कृषि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, परन्तु आने वाले समय में सिंचाई संसाधनों के घटने के कारण इस योगदान में कमी हो सकती है। पर्याप्त जलनिकास के विकल्प के बिना सिंचाई का दायरा बढ़ाना, जलमग्नता, क्षारीयता तथा लवणता जैसी समस्याओं को बढ़ाने में अहम कारक होगा। वर्तमान में क्षारीय व लवणीय क्षेत्र 6.73 मिलियन हैक्टर है तथा 2025 तक बढ़कर 11.7 मिलियन हैक्टर हो सकता है। प्राकृतिक एवं मानवजनित कारकों द्वारा सतही तथा भूजल संसाधनों के प्रदूषण में तीव्र वृद्धि हुई है जबकि हाल ही के कुछ वर्षों में निम्न गुणवत्ता जल का फैलाव दोनों तरह, स्थानिक तथा अस्थायी रूप से कई गुणा हुआ है। उदाहरण के लिए आर्सेनिक प्रदूषित भूजल जो 1980 में पश्चिमी बंगाल में रिपोर्ट किया गया था अब छतीसगढ़, बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा आसाम से भी रिपोर्ट किया जा रहा है। भूजल में इस तरह के विषैले प्रदूषण कारक अब जनस्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत अधिक चिंता का विषय है। शहरी जनसंख्या में 30 प्रतिशत दशकीय वृद्धि मानते हुये घरेलू क्षेत्र से उत्सर्जित मलजल का वर्तमान आंकलन 33000 मिलियन लीटर प्रतिदिन है। इस तरह के दूषित जल का सुरक्षित निकास एक अलग चिंता का विषय है जो कि पहले ही हमारे सतही भूजल संसाधनों को प्रदूषित कर चुका है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से भारतीय कृषि को बचाने के लिए हमें अपने संसाधनों का न्यायसंगत इस्तेमाल करना होगा व भारतीय जीवन दर्शन को अपनाकर हमें अपने पारंपरिक ज्ञान को अमल में लाना पड़ेगा। अब इस बात की सख्त जरूरत है कि हमें खेती में ऐसे पर्यावरण मित्र तरीकों को अहमियत देनी होगी जिनसे हम अपनी मृदा की उत्पादकता को बरकरार रख सकें व प्राकृतिक संसाधनों को बचा सकें।

इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए लवणीय व क्षारीय मृदाओं के सुधार एवं खारे तथा निम्न गुणवत्ता वाले जल के कृषि में उपयोग हेतु केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल द्वारा प्रभावी सुधार एवं प्रबंधन तकनीकें विकसित की गई हैं। पिछले कुछ वर्षों में किये गये अनुसंधानों से सिद्ध होता है कि निम्न गुणवत्ता मिट्टी एवं जल संसाधनों में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने तथा करोड़ों देशवासियों की आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की अच्छी संभावनाएं हैं।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए कृषि किरण पत्रिका का वार्षिक अंक 5 वर्ष 2012 प्रकाशित कर रहा है जिसमें उपरोक्त विषयों से संबंधित आलेख तथा अन्य ज्ञानवर्धक सामग्री सम्मिलित की गई है। मैं संस्थान तथा उन संस्थाओं के वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का आभारी हूँ जिनके अनुसंधान कार्यों एवं अनुभवों को इस पत्रिका में प्रकाशित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका संस्थान द्वारा विकसित तकनीकों एवं कृषि से संबंधित महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी को हिंदी माध्यम से किसानों एवं कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचा कर देश की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान करेगी। संपादक मण्डल के सभी सदस्यों को उनके इस सराहनीय प्रयास के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और कृषि किरण के इस अंक की सफलता की कामना करता हूँ।

**(दिनेश कुमार शर्मा)**

निदेशक

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल

# संपादकीय

भारत की लगातार बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न जरुरतों को पूरा करने लिए कृषि उत्पादन हेतु उपजाऊ भूमि और अच्छे गुणवत्ता वाले जल की आवश्यकता है। बढ़ते शहरीकरण के कारण कृषि के लिए उर्वर भूमि की उपलब्धता कम होती जा रही है साथ ही साथ अच्छे जल की कमी होती जा रही है। इन समस्याओं को देखते हुये लवण प्रभावित एवं अनुपजाऊ भूमि को सुधार कर फसल उत्पादन के लिए प्रयोग करना होगा तथा निम्न गुणवत्ता वाले जल से सिंचाई की संभावनाएं भी तलाशनी होगी।

आज हम परिवर्तन के उस मोड़ पर खड़े हैं जहाँ हम जीवन और समाज के सभी घटकों में आर्थिक और वैज्ञानिक विकास के प्रति कृतसंकल्प हैं। हम एक ऐसे समाज की संरचना में संलग्न हैं जो किसी भी प्रकार की विसंगति से परे हो और जहाँ सभी को अपने सपने साकार करने के समान अवसर प्राप्त हों। इसके लिए बहुत बड़े स्तर पर तकनीकी विकास की आवश्यकता है। एक उन्नत व सभ्य समाज के लिए सरल भाषा व साहित्य ही अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है जिससे श्रेष्ठ विचार और संवेदनाएं मूर्त रूप में सम्प्रेषित होने से व्यक्तिगत विकास और समाज को जोड़ने के साथ प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। सभ्य समाज और संस्कारित एवं सुयोग्य व्यक्तियों के गरिमामय तेजस्वी विचारों से हम साहित्य के माध्यम से रूबरू होते हैं। हमारी अपनी सरल भाषा में प्रकाशित साहित्य चित्त को रूढ़ और निर्जीव परम्पराओं से मुक्त कर नये संदर्भ में ग्रहण करने की शक्ति को प्रबुद्ध बनाता है।

हम अपने संस्थान की राजभाषा पत्रिका कृषि किरण के माध्यम से इन्हीं दायित्वों को पूरा करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। पत्रिका का पाँचवां अंक प्रकाशित करते हुये हमें हर्ष हो रहा है। इस अंक में वैज्ञानिकों के द्वारा सरल व सहज भाषा में लिखे गए उपयोगी लेखों को सम्मिलित किया गया है। विभाग परिचय में इस बार अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, लवणग्रस्त भूमियों का प्रबंधन एवं खारे जल का कृषि में उपयोग का परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में संस्थान में आयोजित राजभाषा संबंधी गतिविधियों की जानकारी भी प्रस्तुत की गई है।

हम केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान तथा उन सभी संस्थाओं के वैज्ञानिकों, विषय विशेषज्ञों और लेखकों के आभारी हैं जिनके बहुमूल्य सहयोग से वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख और ज्ञानवर्धक साम्रगी इस अंक में प्रकाशित की गई है। हम संस्थान के निदेशक डा. दिनेश कुमार शर्मा का आभार प्रकट करते हैं जिनके कुशल मार्गदर्शन में इस अंक का प्रकाशन संभव हो सका है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिंदी से लगाव रखने वाले पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

**संपादक**

अनुक्रमणिका


| | आलेख | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. | **गुजरात राज्य के सरदार सरोवर नहर कमांड में बारा क्षेत्र हेतु उचित भूमि उपयोग नियोजन**<br>अनिल चिंचमलातपुरे, ए॰के॰ नायक एवं जी॰ गुरूराजा राव | 1 |
| 2. | **प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए संरक्षण खेती अपनाएँ**<br>हनुमान सहाय जाट, गुरबचन सिंह, सत्येन्द्र कुमार एवं राजेन्द्र कुमार यादव | 6 |
| 3. | **मृदा स्वास्थ्य के लिए मृदा जैव विविधता की भूमिका**<br>बाबू लाल मीणा एवं गजेन्द्र | 12 |
| 4. | **लवण प्रभावित क्षेत्रों में हरी खाद हेतु ढैंचा उगाएं एवं फसलों की पैदावार बढ़ाएँ**<br>एस॰के॰ चौहान, आर॰बी॰ सिंह एवं आर॰एल॰ मीणा | 17 |
| 5. | **फसल उत्पादन में सल्फर का महत्व**<br>रामेश्वर लाल मीणा, बाबू लाल मीणा, गजेन्द्र एवं सुनील कुमार अम्बष्ट | 20 |
| 6. | **क्षारीय स्थितियों में धान की सीधी बुआई द्वारा परंपरागत रोपाई विधि की तुलना में अधिक आय एवं संसाधन संरक्षण**<br>रणबीर सिंह, आर॰एस॰ त्रिपाठी, एस॰के॰ चौधरी, डी॰के॰ शर्मा, पी॰के॰ जोशी, एस॰के॰ शर्मा, प्रदीप डे, डी॰पी॰ शर्मा एवं गुरबचन सिंह | 26 |
| 7. | **लवणीय जल सिंचित भूमि में सरसों की सफल खेती**<br>भूदयाल पाठक, रमेश सिंह चौहान एवं पवन कुमार सिसोदिया | 34 |
| 8. | **अर्धशुष्क क्षेत्रों में बीजीय मसाला फसलों की उत्पादन तकनीक एवं आर्थिक महत्व**<br>रविन्द्र सिंह, शारदा चौधरी, एच॰एस॰ जाट, आर॰के॰ यादव, आर॰एल॰ मीणा एवं बलराज सिंह | 36 |
| 9. | **शुष्क क्षेत्रों में उद्यानिक फसलों की व्यावसायिक खेती में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली का महत्त्व**<br>सत्येन्द्र कुमार, राजबीर सिंह, भास्कर नरजरी, एवं एस॰के॰ कामरा | 42 |
| 10. | **लवणीय जल क्षेत्रों में मेड़ पर बुआई करें और अधिक पैदावार लें**<br>एस॰के॰ चौहान, आर॰बी॰ सिंह एवं आर॰एल॰ मीणा | 48 |
| 11. | **शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की लवणीय मृदा में ग्वारपाठा की खेती –एक लाभदायक विकल्प**<br>एम॰एल॰ मीणा, धीरज सिंह, एम॰के॰ चौधरी एवं पी॰के॰ तोमर | 53 |
| 12. | **सगंध फसल पुदीना की लाभकारी खेती**<br>मसव्वर अली, राजेश कुमार, भगवत सिह खैरावत, बाबू लाल मीणा एवं सुखदेव कुमार | 56 |
| 13. | **अनुपजाऊ शुष्क लवणीय क्षेत्रों के लिए लाभकारी फसल – मेहंदी**<br>धीरज सिंह, एम॰के॰ चौधरी, पी॰के॰ तोमर एवं एम॰एल॰ मीणा | 58 |

अनुक्रमणिका


14. **शुष्क लवणीय व क्षारीय मृदा क्षेत्रों के लिए वरदान : कुमट** 62
एम॰के॰ चौधरी, धीरज सिंह, एम॰एल॰ मीणा एवं पी॰के॰ तोमर

15. **उत्तम स्वास्थ्य एवं कुपोषण निवारण में सोया खाद्य पदार्थों का महत्व** 66
राकेश सिंह, अजय कुमार मिश्रा, अलका कुमारी एवं प्रवीण कुमार

16. **लवणीय मृदा एवं निम्न गुणवत्ता भूजल क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगने वाले बेल पत्र की औषधीय उपयोगिता** 70
अजय कुमार मिश्रा, राकेश सिंह, अंशुमान सिंह, अलका कुमारी एवं गिर्राज प्रसाद मीना

17. **पादप संरक्षण एवं जैविक खेतीः पूर्वोत्तर भारत में पारिस्थितिकी तंत्र आधारित वैज्ञानिक एवं पारंपरिक ज्ञान का एक अनुभव उल्लेख** 74
रंजय कुमार सिंह

18. **अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना "लवणग्रस्त मृदाओं का प्रबंध एवं खारे जल का कृषि में उपयोग" एक परिचय** 81
रामेश्वर लाल मीणा, सुनील कुमार अम्बष्ट एवं दिनेश कुमार शर्मा

19. **राजभाषा हिंदी – एक अवलोकन** 86
रामेश्वर लाल मीणा एवं राजेन्द्र कुमार यादव

20. **कविताएँ**
- **नव वर्ष मंगलमय हो** 91
  कवि अवध बिहारी "अवध"
- **स्वर्ग समान गऊंआँ** 92
  कवि अवध बिहारी "अवध"

21. **राजभाषा कार्यक्रम**
- **संस्थान के कृषि अनुसंधान में राजभाषा हिंदी** 94
  रामेश्वर लाल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं सुनील कुमार त्यागी

# गुजरात राज्य के सरदार सरोवर नहर कमांड में बारा क्षेत्र हेतु उचित भूमि उपयोग नियोजन

अनिल चिंचमलातपुरे[1], ए.के. नायक[2] एवं जी. गुरूराजा राव[3]

[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

[2]केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक (ओडीशा)

[3]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरूच (गुजरात)

बहुउद्देशीय सरदार सरोवर नहर कमांड परियोजना द्वारा गुजरात प्रांत के करीब 4300 गाँवों की 18 लाख हैक्टर बारानी कृषि भूमि में सिंचाई उपलब्ध करवाई जा सकती है। इस कमांड क्षेत्र में जल और मृदा के समुचित उपयोग पर ही कृषि की सफलता निर्भर करती है। बारा क्षेत्र भरूच जिले के वागरा, जंबुसर और आमोद तालुका में 11130 हैक्टर भूभाग में फैला है तथा गुजरात समुद्र तट से लगा हुआ है। बारा क्षेत्र में लगभग 40 प्रतिशत भूमि की ऊपरी सतह में लवणता की समस्या न के बराबर है 2 डेसी सीमन प्रति मीटर लगभग 49 प्रतिशत भूमि में लवणता 2–4 डेसी सीमन प्रति मीटर है और 11 प्रतिशत भूमि में लवणता 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से भी अधिक है जो कृषि के लिये अत्यन्त संवेदनशील है। लगभग 75 प्रतिशत भूमि की निचली सतह में लवणता 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से अधिक, 10 प्रतिशत भूमि की निचली सतह में लवणता 2 डेसी सीमन प्रति मीटर से कम है और 15 प्रतिशत में लवणता 2–4 डेसी सीमन प्रति मीटर के बीच है। कृषि क्षेत्रों में स्थायी भूमि उपयोग की योजना बनाने के लिये मृदा उपयोगिता वर्गीकरण

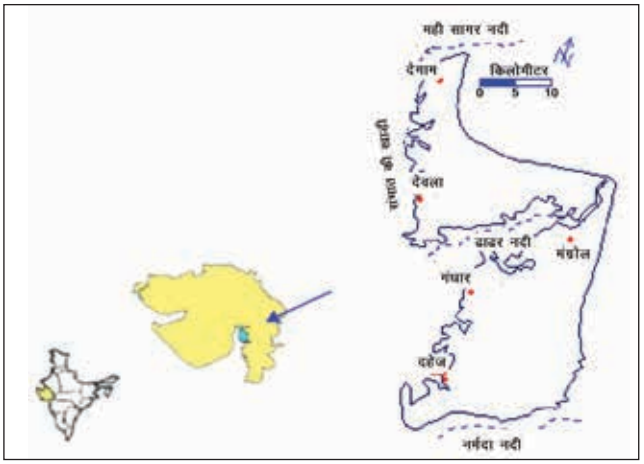


*बारा क्षेत्र के स्थान का नक्शा*

करना जरूरी है जिससे वर्तमान एवं संभावित प्रभावी भूमि उपयोग पद्धति तैयार की जा सके। बेहतर भूमि उपयोग के लिये समस्याओं का मूल्यांकन और उनका समाधान करना अनिवार्य है जो उचित भूमि उपयोग नियोजन से ही संभव हो सकता है।

बारा क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति 21° 40′ से 22° 13′ उत्तर अक्षांश और 22° 32′ से 72° 55′ पूर्व दक्षांश है और 5–9 मीटर औसत समुद्र तल से ऊपर है। इस क्षेत्र के दक्षिण में नर्मदा नदी और उत्तर में माही नदी बहती है। इस क्षेत्र का अधिकतर भूभाग लगभग समतल है। बारा क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत भाग खेती, 15–20 प्रतिशत गैर कृषि बंजर भूमि, 8–10 प्रतिशत कृषि बंजर भूमि और शेष भाग चारागाह के अंतर्गत है। बारा क्षेत्र का प्रमुख हिस्सा वर्षा आधारित खेती के अधीन आता है और कुछ सीमित क्षेत्र सिंचित कृषि के अंतर्गत है। इस क्षेत्र में काली मिट्टी पायी जाती है जिसे कपास की काली मिट्टी कहते हैं। इस क्षेत्र की काली मिट्टी लवणता की समस्या से ग्रस्त है। यहाँ के किसान परंपरागत ढंग से खेती करते हैं। इस लवणीय वातावरण में कृषि की उत्पादकता बहुत ही कम रहती है जिसका मुख्य कारण उचित भूमि उपयोग नियोजन की कमी है। किसानों की कृषि समस्याओं के समाधान और कृषि की उत्पादकता बढाने हेतु बारा क्षेत्र में भूमि मूल्यांकन का अध्ययन तथा सर्वेक्षण करके मृदा के गुणधर्म का आंकलन एवं वर्गीकरण किया गया।

## बारा क्षेत्र की जलवायु

अध्ययन क्षेत्र उष्णकटिबंधीय जलवायु के अंतर्गत आता है। मई में अधिकतम तापमान 45° सेंटीग्रेड से अधिक हो जाता है। वार्षिक वर्षा 275 से 1484 मि.मी. तक होती है तथा औसतन 737 मि.मी. है। 96 वर्षों (1901–1998)

के वर्षा आंकडों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि लगभग 23 साल तक इस क्षेत्र में वर्षा सामान्य से कम रही और 6 साल में सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ा। बारा क्षेत्र में मानसून का आगमन अनियमित है जिसकी वजह से फसलों की बुआई, अंकुरण एवं अंकुर स्थापना पर विपरीतप्रभाव होता है। इस क्षेत्र में आमतौर पर जुलाई से सिंतबर के महीनों में कम से कम एक बार क्रांतिक सूखा पड़ता है जिसकी अवधि 21–28 दिनों के बीच होती है। अध्ययन क्षेत्र में वर्षा से पानी की आपूर्ति जून से सिंतबर के महीनों में सिंचाई की जरूरत से ज्यादा रहती है। मांग से अधिक पानी की आपूर्ति मिट्टी की नमी धारण क्षमता (औसत 200 मि.मी.) से अधिक नहीं है इसलिए भुजल पुनर्भरण बरसात के महीनों में ही होता है। भूजल पुनर्भरण से मिट्टी में उपलब्ध नमी का उपयोग अक्टूबर महीने के दौरान किया जाता है।

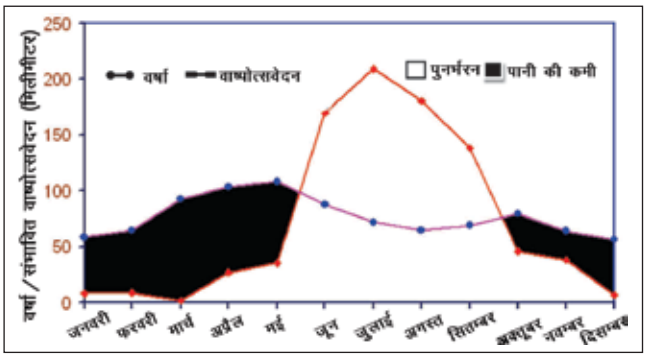


*बारा क्षेत्र में वर्षा के पानी का वितरण*

## बारा क्षेत्र की मृदा

इस क्षेत्र की मृदा का वर्गीकरण वर्टीसोल श्रेणी में किया गया है जिसे कपास की काली मिट्टी कहते हैं। यह मिट्टी बहुत गहरी (150–200 सेंमी.), चिकनी काली मृदा (45–61 प्रतिशत मटियार) एवं मोंटमोरीलोनाईट खनिज से बनी है। यह मिट्टी सिकुडने–फूलने के गुणधर्म दर्शाती हैं और सूखने पर इसमें 4–6 सेंमी. चौडी तथा 100 सेंमी. गहरी दरारें पड़ जाती है। यह सब गुणधर्म मोंटमोरीलोनाईट खनिज की वजह से होते हैं। इस काली मिट्टी की नमी धारण करने की क्षमता ज्यादा है परंतु इसकी पारगम्यता बहुत धीमी और जलनिकासी एकदम धीमी अथवा नहीं के बराबर है। यह मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट कंकर एवं पाउडर के रूप में पाया जाता है और आमतौर पर अम्लीय गुणधर्म दर्शाता है। बारा क्षेत्र में पाये जाने वाली मिट्टी के विशिष्ट गुणधर्म तालिका 1 में दिये गये हैं।

बारा क्षेत्र की उपसतही मृदा में घुलनशील लवण की मात्रा बहुत ज्यादा और सतही मृदा में कम है। यह भी देखा गया है कि 44075 हैक्टर क्षेत्र (बारा क्षेत्र के कुल क्षेत्रफल का 40 प्रतिशत) की सतह की मृदा में लवण की मात्रा 2 डेसी सीमन प्रति मीटर से कम है जबकि 54871 हैक्टर क्षेत्र (49 प्रतिशत) में लवण की मात्रा 2–4 डेसी सीमन प्रति मीटर है और 12354 हैक्टर क्षेत्र (11 प्रतिशत) में लवण की मात्रा 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ज्यादा पायी गयी है।

### तालिका 1 : काली मिट्टी के भौतिक तथा रासायनिक गुणधर्म

| गहराई (मी.) | गुणधर्म | | | | | | कणाकार विश्लेषण (प्रतिशत) | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | मृदा लवणता (डेसी सीमन प्रति मीटर) | पीएच मान | कैल्शियम कार्बोनेट (प्रतिशत) | कार्बोनिक कार्बन (प्रतिशत) | धनायन विनिमय क्षमता (सीईसी) | विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता (ईसीपी) | बालू | गद | मटियार |
| 0.0–0.20 | 2.8 | 8.2 | 5.7 | 5.5 | 44.3 | 9.8 | 17.8 | 30.4 | 51.8 |
| 0.20–0.44 | 2.7 | 8.0 | 5.7 | 3.7 | 45.4 | 10.5 | 22.0 | 25.8 | 52.2 |
| 0.44–0.73 | 10.9 | 7.5 | 6.4 | 2.5 | 49.9 | 11.3 | 14.2 | 26.9 | 58.9 |
| 0.73–0.96 | 10.9 | 7.5 | 6.3 | 1.4 | 50.1 | 10.4 | 11.4 | 27.2 | 61.4 |
| 0.96–1.25 | 10.5 | 7.7 | 6.4 | 2.3 | 44.4 | 5.7 | 21.8 | 26.8 | 51.4 |
| 1.25–1.50 | 11.4 | 7.7 | 17.7 | 0.1 | 36.2 | 4.7 | 37.2 | 18.0 | 44.8 |

**तालिका 2 : जंबुसर, वागरा एवं आमोद तालुका में मृदा लवणता की मात्रा और क्षेत्रफल (हैक्टर) का विवरण**

| तालुका | मृदा लवणता 2 डेसी सीमन प्रति मीटर से कम | मृदा लवणता (उपसतही) 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ज्यादा | मृदा लवणता (तटीय लवणता) 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ज्यादा | कुल विस्तार |
|---|---|---|---|---|
| जंबुसर | 20516 (18.7) | 57086 (51.9) | 32337 (29.4) | 109939 (100) |
| वागरा | 18466 (20.6) | 27000 (30.1) | 44324 (49.3) | 89808 (100) |
| आमोद | 32919 (70.6) | 7694 (16.5) | 6038 (12.9) | 46651 (100) |

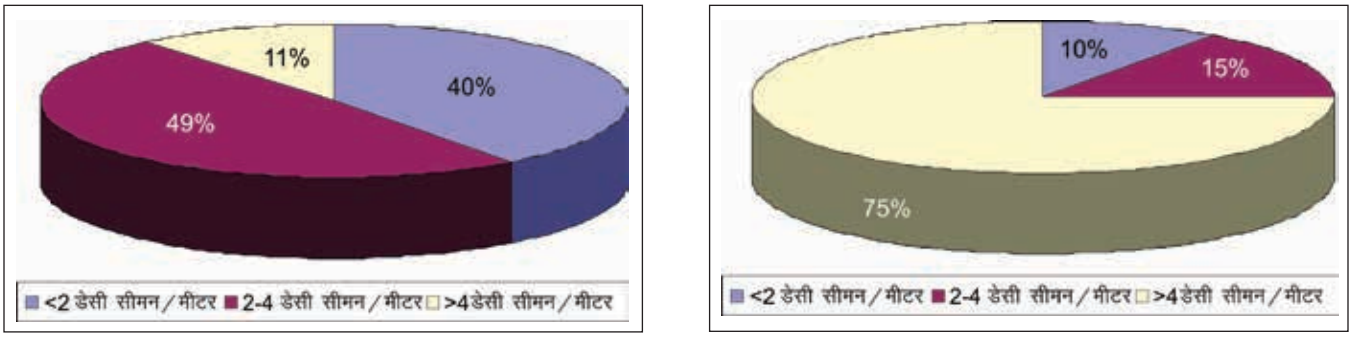


*बारा क्षेत्र में लवणता से प्रभावित (अ) सतही मृदा (ब) उपसतही मृदा का क्षेत्र*

बारा क्षेत्र की उपसतही मृदा की बात करें तो 83475 हैक्टर (75 प्रतिशत क्षेत्र) में लवण की मात्रा 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ज्यादा पायी गई है। इसके अतिरिक्त 16695 हैक्टर (15 प्रतिशत क्षेत्र) में 2–4 डेसी सीमन प्रति मीटर तथा 11130 हैक्टर (10 प्रतिशत) में 2 डेसी सीमन प्रति मीटर से कम पायी गई है। इस तरह की मृदा लवणता का कारण बारा क्षेत्र का समुद्र तट के निकट होना हो सकता है। तालिका 2 में बारा क्षेत्र के तीनों तालुका में पायी जाने वाली लवणता का विश्लेषण दिया गया है।

## मृदा–स्थल उपयोगिता वर्गीकरण

भूमि गुणवत्ता और विशेषताओं के आधार पर फसल की आवश्यकता एवं मिट्टी के गुणधर्म का मिलान करके मृदा स्थल उपयोगिता वर्गीकरण किया गया है। सीमांत दृष्टिकोण एवं इष्टतम परिस्थितियों से अलग भू विशेषताओं जोकि विशिष्ट भूमि उपयोग को प्रभावित करती है, को ध्यान में रखते हुये इन मृदाओं की उपयुक्तता का कपास और गेहूँ की फसलों के लिये मूल्यांकन किया गया है। जलवायु, नमी, स्थलाकृति एवं मिट्टी के साथ जुड़े कारकों के संबंध में सीमाओं का प्रकार एवं मात्रा का विश्लेषण करते हुये भूमि की उपयुक्तता का मूल्यांकन अलग–अलग फसलों के लिये किया जाता है। मृदा स्थल गुणधर्म जैसे कि जलवायु, स्थलाकृति (ढलान), कटाव, जलनिकास, मिट्टी बनावट, गहराई, धनायन विनिमय क्षमता, कार्बोनिक कार्बन, पीएच, विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशतता आदि का मूल्यांकन मृदा स्थल उपयुक्तता मापदंड के आधार

*लवणीय काली मिट्टी में उगाई गयी कपास की फसल का दृश्य*

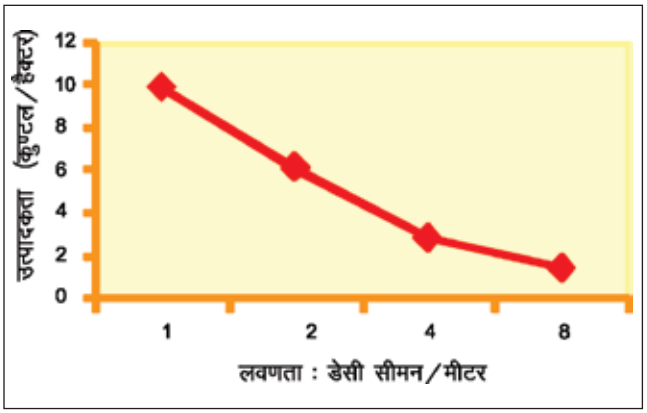


*बारा क्षेत्र में उगाये गये कपास के उत्पादन पर लवणता का प्रभाव*

पर अलग–अलग फसलों के लिये खाध एवं कृषि संगठन द्वारा मान्य मानकों के आधार पर किया गया और उसे सीमाओं की डिग्री (0,1,2,3,4) संदर्भ में व्यक्त किया गया है। सीमा की डिग्री 2 बहुत ही क्रांतिक समझी जाती है क्योंकि इस पर अपेक्षित उत्पादन में अत्यधिक कमी आती है एवं इन स्थितियों में खेती से आर्थिक लाभ बहुत ही कम होता है। इस क्षेत्र में फसल विकास के लिये प्रमुख महत्वपूर्ण सीमित कारकों में मृदा लवणता (विशेष रूप से उपसतही मृदा की लवणता) और मिट्टी में जड़ों के आसपास कम नमी की उपलब्धता का समावेश है।

बारा क्षेत्र की काली मृदा के गुणधर्म जैसे मिट्टी की बनावट, गहराई, धनायन विनिमय क्षमता, कार्बोनिक कार्बन, पीएच आदि में बहुत ज्यादा भिन्नता नहीं है लेकिन ज्यादा भिन्नता वाले गुणधर्म जैसे मृदा की लवणता एवं नमी की उपलब्धता है तथा इन दो प्रमुख कारकों की वजह से कपास और गेहूँ की फसलों के लिए मृदा स्थल उपयुक्तता का वर्गीकरण प्रभावित होता है। इसलिए बारा क्षेत्र में कपास और गेहूँ फसलों के लिये वर्तमान एवं संभावित मृदा स्थल उपयुक्तता का वर्गीकरण मृदा की लवणता एवं नमी की उपलब्धता के आधार पर किया गया है। इस वर्गीकरण में उपयुक्त श्रेणी में तीन वर्ग है, एस–1 अत्यधिक उपयुक्त, जिसमें फसल की वृद्धि एवं पैदावार बहुत अच्छी होती है, एस–2 मध्यम उपयुक्त, भूमि लगभग इष्टतम स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है। भूमि की उत्पादकता इष्टतम उत्पादकता से 20 प्रतिशत कम होती है। एस–3 सीमांत रूप से उपयुक्त, भूमि की उत्पादकता काफी प्रभावित परन्तु किफायती होती है। एन–1 वर्ग में भूमि की उपयुक्तता नहीं के बराबर होती है। बहुत सारे सीमित करने वाले कारकों की वजह से भूमि कृषि के लिये उपयुक्त नहीं होती लेकिन इन सीमित कारकों को सही किया जा सकता है।

इस मापदंड का उपयोग करके अलग–अलग उपयुक्तता का प्रतिनिधित्व करने वाले इस क्षेत्र की जमीन के आंकलन में पाया गया कि बारा क्षेत्र की 83475 हैक्टर भूमि कपास फसल के लिये और लगभग 55650 (50 प्रतिशत) हैक्टर भूमि गेहूँ की फसल के लिये मध्यम उपयुक्त वर्ग में आती है। मिट्टी में नमी की उपलब्धता कम होने के कारण गेहूँ और कपास की फसलों की उत्पादकता 20 से 30 प्रतिशत प्रभावित होती है। लेकिन नमी की उपलब्धता योग्य मात्रा में उपलब्ध करवाकर उपज बढ़ा सकतें हैं। इन फसलों की वृद्धि के दौरान नहरी सिंचाई की उपलब्धता होने से इष्टतम उपज प्राप्त हो सकती है और नहरी सिंचाई की उपलब्धता से मृदा स्थल उपयुक्तता वर्गीकरण बदल सकता है।

यह देखा गया है कि जो भूमि इकाईयाँ कपास एवं गेहूँ के लिये वर्तमान स्थिति में मध्यम उपयुक्त श्रेणी में आती है (तालिका 3)। वह इन फसलों के लिये अत्यधिक

**तालिका 3 : विभिन्न फसलों के लिये अलग अलग उपयुक्तता श्रेणी के अंतर्गत क्षेत्र (प्रतिशत)**

| फसलें | उपयुक्तता श्रेणी | वर्तमान उपयुक्तता श्रेणी क्षेत्र (प्रतिशत) | संभावित उपयुक्तता श्रेणी क्षेत्र (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|
| कपास | अत्यधिक उपयुक्त | 13 | 68.5 |
| | मध्यम उपयुक्त | 74.5 | 30.6 |
| | सीमांत रूप से उपयुक्त | 12.3 | – |
| | उपयुक्त नहीं | 0.2 | 0.9 |
| गेहूँ | अत्यधिक उपयुक्त | 0 | 52.1 |
| | मध्यम उपयुक्त | 50.0 | 36.4 |
| | सीमांत रूप से उपयुक्त | 39.1 | 7.9 |
| | उपयुक्त नहीं | 10.9 | 3.6 |

उपयुक्त श्रेणी में बदल सकती है और कपास एवं गेहूँ के लिए अनुमानित क्षेत्र क्रमशः 76240 एवं 57987 हैक्टर हो सकता है ।

उचित भूमि उपयोग नियोजन के लिये भूमि मूल्यांकन एक सार्थक माध्यम है। मिट्टी एवं जलवायु संसाधन, और मिट्टी के गुणधर्म के आधार पर यह ज्ञात होता है कि अधिकांश जमीन अत्यधिक उपजाऊ है। इस प्रकार मृदा स्थल उपयुक्तता वर्गीकरण के अध्ययन से नहर कमांड के बारा क्षेत्र की मृदा क्षमता और उत्पादकता का पूरा परिदृश्य सामने आया है। सीमित कारकों की डिग्री एवं तीव्रता का आंकलन करने से ही मिट्टी की उपयुक्तता का वर्गीकरण विभिन्न फसलों के लिये किया जा सकता है। अगर सिंचाई की उपलब्धता और मृदा लवणता का विशेष प्रबंधन किया जाये तो बारा क्षेत्र में कपास और गेहूँ की इष्टतम उपज प्राप्त हो सकती है।

## निष्कर्ष

किसानों द्वारा पारंपरिक खेती करने के कारण बारा क्षेत्र की लवणीय मिट्टी की उपजाऊ क्षमता का समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है। इस क्षेत्र की मृदा गहरी, चिकनी, ज्यादा नमी धारण करने वाली है परन्तु उपसतही मिट्टी में घुलनशील लवणों की मात्रा ज्यादा और सतही परत में कम पायी गई।

इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि 40 प्रतिशत सतह की मृदा लवणों के प्रभाव से मुक्त है, 49 प्रतिशत सतह की मृदा में लवणता 2–4 डेसी सीमन प्रति मीटर है और 11 प्रतिशत में 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ज्यादा है। इसके विपरीत 75 प्रतिशत उपसतही मृदा के लवणों की मात्रा 4 डेसी सीमन प्रति मीटर से ज्यादा है।

भूमि मूल्यांकन एक विशिष्ट फसल की उपयुक्तता जानने की प्रणाली है जिससे भूमि के उपयोग और प्रबंधन के लिये उसकी कमी एवं अवसर के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इस तरह का मूल्यांकन उचित भूमि उपयोग नियोजन के लिये आवश्यक है। वर्तमान अध्ययन में कपास और गेहूँ के लिये मृदा स्थल उपयुक्तता वर्गीकरण के लिये सीमा दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में 87 व 50 प्रतिशत तथा नहर से सिंचाई जल उपलब्धता व मृदा लवणता का उचित प्रबंधन करने के उपरान्त संभावित 99 एवं 88 प्रतिशत बारा क्षेत्र में कपास एवं गेहूँ की इष्टतम उपज संभव है।

**– समाप्त –**

जीवन उपन्यास की तरह है जिसके हर पृष्ठ पर
कुछ नया इंतजार कर रहा होता है।

# प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए संरक्षण खेती अपनाएँ

हनुमान सहाय जाट, गुरबचन सिंह, सत्येन्द्र कुमार एवं राजेन्द्र कुमार यादव
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर निर्भर करती है। भारत की कुल भूमि के 51 प्रतिशत भाग पर खेती की जाती है। भारत में सभी प्रकार की जलवायु जैसे शीतोष्ण, समशीतोष्ण, कटिबंधीय, उष्ण कटिबंधीय इत्यादि पायी जाती है। यहाँ पर भूमि क्षरण एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या है जो हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा है। भूमि क्षरण कई कारणों से हो सकता है उनमें मुख्यतः मृदा कटाव, पोषक तत्वों का दोहन, मृदा कार्बनिक पदार्थों की हानि आदि प्रमुख है। पूरे विश्व में भूमि क्षरण से मिट्टी की उत्पादन शक्ति में कमी, जैव विविधता में कमी, अनियंत्रित एवं अस्थिर भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन तथा आर्थिक नुकसान आदि समस्याएं उत्पन्न हो रही है। यह सब समस्याएँ विश्व जनसंख्या बढ़ने के साथ और बढ़ती रहेगी जिसके कारण भूमि एवं अनाज के लिए विभिन्न देशों में प्रतिस्पर्धा बनी रहेगी। प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग करके ही हम किसी कारगर निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। भूमि क्षरण रोकने के लिए पिछले कई वर्षों से विकल्पों की तलाश निरन्तर जारी है। भूमि संसाधनों का उपयोग एवं प्रबन्धन विधियों पर मृदा की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। मृदा की लगातार गहन/अत्यधिक जुताई करने से इसमें कार्बनिक पदार्थों एवं खनिज तत्वों की कमी हो जाती है तथा मृदा संरचना पर भी गहरा विपरीत प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कार्बनिक पदार्थ मृदा संरचना के स्थिरीकरण के लिए अत्यंत आवश्यक तत्व है। गहन कृषि के अंतर्गत खेत की लम्बे समय तक अत्यधिक जुताई करने व धान की पारंपरिक खेती के लिए पाड़े काटने से अधोस्तर में कठोर परत बन जाती है जो भूमि क्षरण को बढ़ावा देती है।

प्राकृतिक व आर्थिक संसाधनों के उपयुक्त उपयोग हेतु हमें आज ही सजग होने की आवश्यकता है तभी हम अपना कल सुरक्षित रख पायेंगे। अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए किसान खेतों में अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग कर रहा है इससे मिट्टी की उर्वराशक्ति दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है जिसके दूरगामी परिणाम आने वाली पीढ़ियों को भुगतने होंगे। जहाँ एक तरफ मृदा की घटती उत्पादन क्षमता की समस्या है वहीं दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्यान्न सुरक्षा भी चिंता का विषय बना हुआ है। जलवायु परिवर्तन की वजह से अनियमित वर्षा जल का वितरण, मार्च महीने में तापमान का एकाएक बढ़ना, अतिवृष्टि, कीट व बीमारियों का प्रकोप इत्यादि कई गंभीर समस्याएं हमारे सामने खड़ी हैं। अधिकांश स्थानों पर भूजल स्तर वर्ष दर वर्ष नीचे जा रहा है फिर भी जल का अत्यधिक दोहन ज्यों का त्यों बना हुआ है। कई राज्यों में जल स्तर क्रान्तिक सीमा रेखा से नीचे जा चुका है फिर भी वहाँ ज्यादा पानी की मांग वाली फसलें जैसे धान, गन्ना, गेहूँ इत्यादि की खेती निरन्तर की जा रही है। इन परिस्थितियों में हमें ऐसी खेती की ओर ध्यान देना चाहिए जिससे प्राकृतिक व आर्थिक संसाधनों का उचित उपयोग हो। ऐसे में संरक्षण खेती का नाम उभर कर सामने आता है।

देश विदेश में कई स्थानों पर संरक्षण खेती के एक या दो सिद्धांतों जैसे न्यून/शून्य जुताई, मिट्टी की सतह पर फसल अवशेष को छोड़ना या फसल चक्र अपनाना इत्यादि के साथ इसे लगभग 40 वर्षों पूर्व से अपनाया जा रहा है लेकिन सभी तीन सिद्धान्तों पर आधारित संरक्षण खेती की तकनीक को अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, ब्राजील इत्यादि ने बड़े स्तर पर अपनी परिस्थितियों एवं क्षमताओं के अनुसार अपनाया है। विश्व में लगभग 1200 लाख हैक्टर क्षेत्र में संरक्षण खेती होती है जिसका 90 प्रतिशत क्षेत्र अर्जेंटीना, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा तथा अमेरिका में है। ब्राजील में मृदा कटाव को रोकने के लिए संरक्षण खेती पर वर्ष 1962 में कार्य शुरू किया गया था। भारत के गंगा के मैदानों

या उत्तर पश्चिमी इलाकों में पिछले 10 वर्षों से इस दिशा में काम किया जा रहा है और अब तक लगभग 20 लाख हैक्टर क्षेत्र इसके अंतर्गत आ चुका है। एशिया महाद्वीप में संरक्षण खेती के अंतर्गत 30 लाख हैक्टर क्षेत्र है जिसमें इसका ज्यादातर क्षेत्र धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अंतर्गत है। उसमें पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र सम्मिलित हैं। आजकल इस तकनीक के सुधार एवं किसानों की स्वीकार्यता पर काम तीव्र गति से चल रहा है जिससे आने वाले समय में इसके क्षेत्र में वृद्धि होने की अपार संभावनाएँ नजर आती है। संरक्षण खेती के सभी सिद्धान्तों को अपनाकर आने वाले समय में विकराल रूप से खड़ी समस्याओं जैसे गरीबी, खाद्य सुरक्षा, मृदा एवं जल संरक्षण, आजीविका, जैव विविधता एवं जलवायु परिवर्तन से कुछ हद तक मुक्ति पाने में सक्षम हो सकते हैं।

## संरक्षण खेती

संरक्षण खेती कृषि की वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत टिकाऊ उत्पादन स्तर को प्राप्त करने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुये संसाधन संरक्षण तकनीक की सहायता से फसल उत्पादन लिया जाता है। संरक्षण खेती मृदा की ऊपरी व नीचे की सतह के अन्दर प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। इसमें फसल उत्पादन को टिकाऊ बनाने के लिये तीन सिद्धान्तों जैसे न्यूनतम जुताई, स्थायी रूप से मिट्टी को ढक कर रखना तथा फसल विविधीकरण को अपनाना आदि का पालन करना चाहिए ताकि किसान बिना पर्यावरण को नुकसान पहुंचाये अपनी आजीविका चला सके एवं अपनी आने वाली पीढीयों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर सके।

*शून्य/न्यून जुताई द्वारा धान के फसल अवशेषों में गेहूँ की फसल*

## संरक्षण खेती की आवश्यकता

संरक्षण खेती एक वास्तविक टिकाऊ उत्पादन प्रदान करने की तकनीक है जो न केवल उच्च उत्पादन स्तर को बनाये रखती है बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं जैव विविधता को भी बढ़ाती है। यह खेती मृदा संरचना एवं मृदा समुच्चय स्थिरीकरण में सुधार व मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता बढ़ाने में सहायक होती है। मृदा में फसल अवशेषों के रखने से सूक्ष्मजीवी विविधता एवं इनकी क्रियाओं पर महत्वपूर्ण लाभदायक प्रभाव पड़ता है जिससे जैव भार में वृद्धि होती है तथा फसलों पर कीटों एवं बीमारियों का प्रकोप कम होता है। इस फसल प्रणाली के अपनाने से पानी का रिसाव बढ़ जाता है जिसकी वजह से पानी का सतही अपवाह बहुत हद तक कम हो जाता है जोकि मृदा क्षरण को कम करके भूजल संसाधनों को बढ़ाने में सहायक है। पारंपरिक खेती में खेत की बार–बार जुताई करनी पड़ती है जबकि संरक्षण खेती में न्यूनतम जुताई की आवश्यकता होती है जिसकी वजह से किसान 25–30 प्रतिशत तक समय, परिश्रम व उत्पादन लागत की बचत कर सकते हैं। साथ ही साथ एक फसल के बाद दूसरी को 7–10 दिन जल्दी उगाया जा सकता है। संरक्षण खेती में फसल उत्पादन पारंपरिक गहन खेती के समतुल्य होने के साथ–साथ स्थायी भी होता है। संरक्षण खेती की सहायता से जलवायु परिवर्तन जैसेः ग्रीन हाऊस गैस का उत्सर्जन, तापमान का बढ़ना आदि को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। इस खेती प्रणाली में कार्बन को मृदा में अधिक समय के लिए संचित किया जा सकता है जिससे पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में सहायता मिलेगी। भारतवर्ष में जनसंख्या (मानव/पशु) को देखते हुये संसाधनों की बहुत कमी है क्योंकि हमारे यहाँ विश्व की 16.8 प्रतिशत (125 करोड़) जनसंख्या है जबकि 4.2 प्रतिशत पानी एवं 2.3 प्रतिशत जमीन उपलब्ध है। इन सबको ध्यान में रखते हुये हमें संरक्षण खेती पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि हमारे प्राकृतिक संसाधन संरक्षित रह सकें।

## संरक्षण खेती के सिद्धान्त

संरक्षण खेती प्रणाली में स्थान विशेष की भौतिक, रासायनिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के

अनुरूप ही उपलब्ध संसाधनों का ईष्टतम उपयोग एवं संरक्षण को ध्यान में रखते हुए टिकाऊ फसल उत्पादन लेने के नये तरीके अपनाये जाते हैं। यह तरीके निम्नलिखित तीन सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

## फसल की प्रत्यक्ष बिजाई या खेत की न्यूनतम जुताई

प्राचीन काल से ही जुताई करने के लिए सबसे व्यापक रूप से ज्ञात उपकरण 'हल' है जो भारतीय कृषि का प्रतीक बना हुआ है। हल द्वारा निरंतर जुताई करने से कार्बनिक पदार्थों का आक्सीकरण बढ़ जाता है जिससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की कमी हो जाती है। कार्बनिक पदार्थ मृदा का महत्वपूर्ण भाग है, यह पदार्थ फसलों को पोषक तत्व प्रदान करता है, साथ ही मृदा संरचना के स्थिरीकरण में भी मदद करता है और लाभदायक जीवाणुओं की संख्या बढ़ाता है। अतः हल, हैरो, कल्टीवेटर इत्यादि यंत्रों द्वारा अधिक भूपरिष्करण मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में परिवर्तन लाते हैं जिससे मृदा क्षरण को बढ़ावा मिलता है फलस्वरूप मृदा की उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता में कमी आती है। इसलिए आज की कृषि में शून्य/न्यूनतम जुताई का नाम बार–बार आ रहा है ताकि मिट्टी से कम से कम छेड़–छाड़ हो। संरक्षण खेती अपनाकर एवं मिट्टी की न्यूनतम जुताई करके किसान कम से कम 25–30 प्रतिशत तक ईंधन एवं मजदूरी की बचत कर सकता है।

## मिट्टी को फसल अवशेष से स्थायी रूप से ढकना या फसल अवशेष द्वारा स्थायी मृदा आवरण

संरक्षण खेती में वर्षों तक जुताई नहीं की जाती जिससे फसल अवशेष भूमि की सतह पर आकार एक कवच या आवरण बना लेते हैं। यह आवरण वर्षा, धूप इत्यादि के हानिकारक प्रभाव से मृदा की रक्षा करता है। स्थायी मृदा आवरण की वजह से मृदा सतह पर सूक्ष्म वातावरण (माइक्रोक्लाईमेट) जीवाणुओं, शैवालों, कवकों एवं केंचुओं के अनुकूल हो जाता है जिससे इनकी संख्या में काफी बढ़ोतरी होती है परिणामस्वरूप फसल अवशेष का विघटन होता है और एक अच्छा जैविक खाद अंश (ह्यूमस) तैयार हो जाता है। ह्यूमस मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों को बढ़ाती है साथ ही साथ फसल के लिए

*सरसों में फसल अवशेष द्वारा अस्थायी मृदा आवरण*

उपयुक्त वातावरण और पोषण प्रदान करती है। संरक्षण खेती में केंचुए और पौधों की जड़ें जैविक जुताई का काम करते हैं जिससे कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्वों का पुनश्चक्र (रीसाइकलिंग) अच्छी प्रकार से होता है। खेत की जुताई न होने से किसान लगभग 25–30 प्रतिशत समय एवं ईंधन की बचत कर सकता है। इसमें लागत कम हो जाती है, मशीनों की देखरेख का खर्चा भी कम होता है। इसके अतिरिक्त फसल अपशेषों की स्थाई परत के कारण मृदा क्षरण बहुत कम होता है।

## फसल विविधीकरण

संरक्षण खेती के अंतर्गत रोग, कीट एवं खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ पौषक तत्वों की उचित उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए फसलों को अदल–बदल कर लगाया जाता है। ऐसा करने से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ एवं जीवाणुओं की संख्या में बढ़ोतरी होती है जिसके फलस्वरूप फसल को पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है। उथली जड़ वाली फसलों को लगाने के बाद गहरी जड़ वाली फसलें लगायी जाती है जिसमें पहली फसल से जो पोषक तत्व निचली सतह (लीचिंग) पर चले जाते हैं उन्हें अगली फसल अवशोषित कर लेती है यह फसल एक जैविक पम्प के रूप में कार्य करती हैं जोकि पोषक तत्वों को रिसाइकल करती है। फसल विविधीकरण मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने तथा फसल संबंधित कीटों एवं रोगों के रोगजनन प्रभाव को तोड़ता है। इसको अपनाने से पानी, पोषक तत्वों, कार्बनिक पदार्थों इत्यादि का मृदा स्तरों में बेहतर वितरण होता है। फसल विविधता के कारण मृदा में उपस्थिति जीवों के पोषण में वृद्धि होती है जिसका सीधा प्रभाव मिट्टी की उर्वराशक्ति बढाने पर पड़ता है।

संरक्षण खेती के सिद्धांतों को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए कई संसाधन संरक्षण तकनीकें अपनायी जाती है जैसे बूँद–बूँद सिंचाई, लेजर लेवलर, बैड प्लान्टर, हैप्पी सीडर, टर्बो सीडर आदि। इनके उपयोग से शून्य जुताई स्थिति में बिजाई करके फसल संसाधनों का प्रबन्धन सुचारू रूप से किया जा सकता है। यह सभी तकनीकें संसाधनों की दक्षता बढ़ाती है।

भारत में संरक्षण खेती प्रणाली मुख्यतः गंगा के मैदानी सिंचित क्षेत्रों में अपनायी जा रही है। इस तकनीक के अंतर्गत धान–गेहूँ फसल प्रणाली में बहुत शोध किया जा रहा है। धान की पुआल पशुओं द्वारा नहीं खायी जाने के कारण इसको मृदा सतह के आवरण के रूप में काम में लिया जाता है तथा गेहूँ की सीधी बिजाई जीरो टिलेज ड्रिल द्वारा धान के फसल अवशेषों में कर दी जाती है। संरक्षण खेती प्रणाली में धान–गेहूँ की उत्पादकता कहीं कम और कहीं पारंपरिक खेती के समतुल्य आ रही है और यह किसी स्थान विशेष, वातावरण एवं उपस्थित संसाधनों पर निर्भर करती है। धान के अलावा दूसरी ऐसी कोई फसल नहीं है जिसकी पैदावार लेने के बाद फसल अवशेष छोड़ सके इसलिए संरक्षण खेती इस फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त प्रणाली है। अन्य फसलों से हमें फसल अवशेष बहुत कम मिलते हैं और यदि मिलते भी हैं तो किसान उनको काटकर पशुओं को चारे के रूप में खिला देता है। अतः धान–गेहूँ फसल प्रणाली में संरक्षण खेती की अपार संभावनाएं हैं। बारानी या वर्षा आधारित क्षेत्रों में यह प्रणाली इतनी कारगर साबित नहीं हुई है क्योंकि वहाँ फसल अवशेषों की कमी रहती है। पशुओं की आबादी अधिक होने के कारण खेत में फसल अवशेष

*टर्बो सीडर द्वारा गेहूँ की बीजाई*

*शून्य जुताई द्वारा गेहूँ के फसल अवशेषों में मूंग की फसल*

रखना एक बढ़ा जोखिम का काम है। हमारे पास चारा भी इतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं है कि पशुओं का पेट भर सकें। आने वाले समय में इन क्षेत्रों में और शोध करने की आवश्यकता है। अपने खेत को साफ–सुथरा रखने की किसान की मानसिकता के कारण संरक्षित खेती का प्रसार कम हो रहा है अतः हम किसान की मानसिकता को बदल कर ही इसको ओर आगे बढ़ा सकते हैं।

## संरक्षण खेती के लाभ

नई प्रौद्योगिकी के बारे में किसानों को समझाने एवं व्यापक रूप से अपनाने के लिए कृषि वैज्ञानिकों एवं विस्तार विभाग के एक बड़े समूह को आकर्षित करने की जरूरत है जो किसानों को समझा सकें कि वे क्या कर रहे हैं और उनको क्या करने की जरूरत है। संरक्षण खेती प्रणाली से मिलने वाले लाभों के प्रति किसानों की जागरूकता बढ़ानी होगी ताकि खेती की यह प्रणाली अपनायी जा सके। इससे मिलने वाले लाभ निम्न प्रकार हैं।

## आर्थिक लाभ

संरक्षण खेती प्रणाली अपनाने में खेत की प्राथमिक जुताई नहीं करने की वजह से, पारंपरिक खेती की तुलना में 25–30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मजदूरी की बचत होती है। साथ ही साथ मशीनरी की परिचालन लागत और रख–रखाव पर खर्च कम होता है। श्रम की आवश्यकता में कमी भी संरक्षण खेती अपनाने का एक बड़ा लाभ है।

## कृषि लाभ

फसल अवशेष का स्थायी आवरण रहने से मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती है

जिससे कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप फसल को अनुकूल वातावरण एवं अधिक मात्रा में पोषक तत्व मिलते हैं। कार्बनिक पदार्थ, मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय वृद्धि, पोषक तत्व प्रतिधारण (रिटेंशन) तथा जड़ीय वातावरण अनुकूलन को बढ़ाने में मुख्य भूमिका अदा करता है। फसलों की जड़ों एवं केंचुए द्वारा बनाये हुये छिद्रों में पानी एवं हवा का आदान प्रदान ठीक से होता है जिससे फसलों की वृद्धि अच्छी प्रकार होती है।

## पर्यावरणीय लाभ

फसल अवशेष मृदा सतह पर पानी और हवा की गति को कम कर देता है जिससे मिट्टी की ऊपरी सतह कम विस्थापित होने से मृदा क्षरण कम होता है। मृदा सतह से पानी का बहाव (रन ऑफ) कम होता है तथा वाष्पीकरण भी कम हो जाता है जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है। इसके अतिरिक्त फसल अवशेष जैव विविधता, जैविक गतिविधियां एवं मृदा वायु गुणवत्ता में बढ़ोतरी करते हैं। यह कार्बन का संचय करने एवं मृदा तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है। संरक्षण खेती प्रणाली को अपनाने से पर्यावरण एवं संसाधन दोनों का संरक्षण होता है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष का स्थायी आवरण तथा फसल विविधीकरण अपनाने से मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता और फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ती है। फसल अवशेषों को नहीं जलाने से पर्यावरण के लिए हानिकारक ग्रीन हाउस गैसें नहीं निकलेगी।

## परीक्षण परिणाम

देश के उत्तरी एवं पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में कई फसल चक्र अपनाये जाते हैं इनमें मुख्यतः अरहर–गेहूँ, अरहर–जौ, ज्वार–जई, मूंग–सरसों, सोयाबीन–गेहूँ, ग्वार–मसूर, बाजरा–चना इत्यादि हैं। भिन्न फसलों की बुआई हेतु अलग–अलग जुताई की आवश्यकता होती है जैसे गेहूँ, सरसों, धान की फसलों को ज्यादा, 5–7 जुताईयों की आवश्यकता पड़ती है जबकि चना, मूंग, ग्वार आदि को 2–3 जुताई की आवश्यकता ही होती है। एक जुताई पर लगभग 500 रुपये प्रति हैक्टर का खर्च आता है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल की फार्म शाखा द्वारा वर्ष 2007–08 से वर्ष 2009–10 तक पारंपरिक एवं शून्य जुताई विधि से विभिन्न फसलों जैसे अरहर, मूंग, सोयाबीन, बाजरा, जौ, जई, गेहूँ, सरसों एवं चने के उत्पादन पर एक अध्ययन किया गया। इसके परिणामों से ज्ञात हुआ कि शून्य जुताई विधि से बुआई करने से सोयाबीन एवं जौ में लगभग 5 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त हुआ जबकि बाजरा एवं सरसों में यह लगभग 12 प्रतिशत रहा। जई, गेहूँ एवं चने का उत्पादन दोनों विधियों से जुताई करने पर लगभग बराबर प्राप्त हुआ। शून्य जुताई विधि की अपेक्षा पारंपरिक विधि से जुताई करने पर अरहर में 5 प्रतिशत एवं मूंग में 7 प्रतिशत तक उत्पादन में बढ़ोत्तरी आंकी गई। इस परिणाम से यह निष्कर्ष निकलता है कि फसलों का उत्पादन पारंपरिक विधि एवं शून्य जुताई विधि से करने पर लगभग बराबर होता है लेकिन शून्य जुताई विधि में 500 रुपये प्रति जुताई के हिसाब से लागत कम आती है और शुद्ध आय बढ़ जाती है। पारंपरिक खेती की तुलना में संरक्षण खेती के अंतर्गत 25–30 प्रतिशत तक समय व ईंधन की बचत होती है। तीन वर्षों के परीक्षण पर आधारित फसलों का उत्पादन तालिका 1 में दर्शाया गया है।

**तालिका 1 : संरक्षण खेती में शून्य/न्यून जुताई एवं पारंपरिक जुताई का फसलों के उत्पादन पर प्रभाव**

| बुआई का समय | फसल | पारंपरिक जुताई (कु./है.) | शून्य जुताई (कु./है.) | तुलनात्मक अन्तर (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|---|
| खरीफ | अरहर | 7.67 | 7.30 | –5.09 |
| | मूंग | 3.30 | 3.09 | –6.95 |
| | सोयाबीन | 16.51 | 17.51 | 5.68 |
| | बाजरा | 15.20 | 17.34 | 12.32 |
| रबी | जौ | 30.35 | 32.01 | 5.18 |
| | जई | 24.27 | 23.82 | –1.88 |
| | गेहूँ | 39.94 | 39.73 | –0.54 |
| | सरसों | 10.43 | 11.83 | 11.82 |
| | चना | 13.31 | 13.34 | 0.19 |

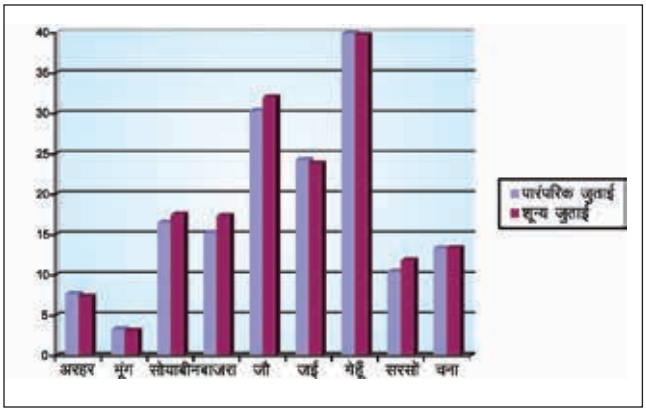


*संरक्षण खेती प्रणाली में शून्य/न्यून जुताई एवं पारंपरिक जुताई का फसलों पर प्रभाव*

## निष्कर्ष

संरक्षण खेती प्रणाली में शून्य/न्यून जुताई के साथ फसल अवशेषों का मिट्टी पर आवरण बनाकर, फसलों की अदल–बदल कर बुआई करने से मिट्टी की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में सुधार होता है साथ ही साथ पर्यावरण और संसाधनों का उच्चतम उपयोग एवं संरक्षण होता है। संरक्षण खेती अपनाने से मिट्टी की उर्वराशक्ति एवं उत्पादन क्षमता बनी रहती है जिससे फसलों का टिकाऊ उत्पादन मिलता है। पारंपरिक खेती की तुलना में संरक्षण खेती के अंतर्गत 25–30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व परिश्रम की बचत होती है। संरक्षण खेती प्रणाली से हमें जल, मृदा एवं पर्यावरण संसाधनों पर दीर्घकालीन सकारात्मक प्रभाव दिखने की उम्मीद है। इसे अपनाकर मृदा क्षरण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि हानिकारक प्रभावों से छुटकारा मिल सकता है।

**– समाप्त –**

वर्तमान पल में सर्वश्रेष्ठ करना आपको अगले पल के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करता है।

# मृदा स्वास्थ्य के लिए मृदा जैव विविधता की भूमिका

बाबू लाल मीणा एवं गजेन्द्र

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

बढ़ती मानव आबादी, मिट्टी की उर्वरता और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के लिए खतरा उत्पन्न कर रही है। इसलिए अगली पीढ़ी के सुरक्षित भविष्य के लिए कृषि भूमि के संरक्षण हेतु हमें ऐसी कृषि प्रणाली का विकास करना चाहिए जो मिट्टी का संरक्षण करे और इसके स्वास्थ्य को बनाये रखे। टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने, उर्वरता को बनाये रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। टिकाऊ कृषि के अंतर्गत मानवीय जरूरतों को पूर्ण करने के लिए कृषि संसाधनों का उचित एवं सफल प्रबंधन अति आवश्यक है। कृषि उत्पादन की वर्तमान आधुनिक तकनीकियों में महत्वपूर्ण मृदा जैविक प्रबंधन घटक को नजरअंदाज कर दिया है। आज हमारा कृषि एवं मृदा प्रबन्धन ज्ञान अधिकाधिक उत्पादन लक्षित ज्ञान, सीमित अनुसंधान अनुप्रयोगों पर आधारित है। परन्तु मृदा का स्वास्थ्य जैव विविधता और जैविक प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है इसलिए हमें मिट्टी की जैविक गतिविधियों और उत्पादकता को लंबे समय तक बनाये रखने के लिए, समुचित मृदा जैविक प्रबंधन तरीकों को व्यापक रूप से अपनाना चाहिए।

## मिट्टी जैव विविधता क्या है

मिट्टी जैव विविधता को आमतौर पर मिट्टी में मौजूद जीवों की विविधता और परिवर्तनशीलता के रूप में परिभाषित किया जाता है। भू–जीवन में विभिन्न फसलों के पौधे ही नहीं, बल्कि अकशेरूकीय जीवों, सूक्ष्मजीवों और उच्च पौधों की प्रजातियों को भी शामिल किया जाता है जो एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। इन सभी को यदि सजीव रूप माना जाये तो संसार में भूमि जीवों की विविधता अन्य वातावरण की तुलना में अधिक व्यापक है। अतः जीवों का सबसे विविध संग्रह मिट्टी में ही है। जितनी घनी प्रजातियाँ मृदा में उपस्थित हैं, उतनी प्रकृति में और कहीं भी नहीं हैं। उदाहरण के लिए, एक ग्राम मिट्टी में एक मिलियन (10 लाख) बैक्टीरिया की कई हजार प्रजातियों को शामिल कर सकते हैं (तालिका 1)। इन जीवों का सूखा वजन, जीवित जीवों के वजन का लगभग 20 से 25 प्रतिशत है। मृदा जीवों में सूक्ष्म वनस्पति, बैक्टीरिया, कवक, मिजो–पशुवर्ग और मैक्रो पशुवर्ग है। मृदा में वृद्धि करने वाले उच्च पौधों की जड़ों को मेक्रो वनस्पत्ति वर्ग में शामिल किया गया है जो भूमि में उगने के साथ ही अन्य पौधों की प्रजातियों को भी प्रभावित करते हैं।

## मिट्टी में जीवों का कार्य

मिट्टी में पाये जाने वाले जीव पारिस्थितिकी तंत्र की उस बड़ी श्रृंखला को प्रभावित करते हैं जो धरती पर जीवों की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण योगदान करती है। उदाहरण के लिए, मिट्टी में जीवों का कार्बन भंडारण पोषक तत्वों के पुनश्चक्रण (न्यूट्रियंट रीसाइक्लिंग) में मुख्य भूमिका निभाता है। पादप प्रजातियों व मिट्टी की जैव विविधता, मृदा उर्वरता, मिट्टी का कटाव, पौधों द्वारा पोषक तत्वों का उद्ग्रहण, मृदा कार्बनिक पदार्थ गठन, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, पौधों व पशु अपशिष्टो का जैविक खनिजीकरण (बायोडिग्रेडेशन), खतरनाक अवशेषों को निष्क्रिय करना और पौधों की कीट आबादी को प्राकृतिक माध्यम से नियंत्रण करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। मृदा जीव फसलों की उत्पादकता बढ़ाते हैं क्योंकि वे मूलभूत पारिस्थितिकी प्रणालियों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का पुनश्चक्रण करते हैं। मृदा जीव भूमि में पानी के प्रवेश करने की दर को बढाकर, सतह पर पानी के बहाव से होने वाले मिट्टी के कटाव को कम करके मिट्टी की उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक है। मृदा में उपरोक्त सकारात्मक परिवर्तन होने से इसमें पोषक तत्वों का पुनःवितरण, हवा का संचार और पानी धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है।

कुछ जीव जो मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं उनकी चर्चा निम्नलिखित अनुसार है।

**तालिका 1 : मिट्टी की ऊपरी सतह (15 सेंमी.) में पाये जाने वाले जीवों और वनस्पतियों की सापेक्षिक संख्या और जीव द्रव्यमान (जीवित वजन के आधार पर)**

| जीव | संख्या | | जीव द्रव्यमान | |
|---|---|---|---|---|
| | प्रति वर्ग मीटर | प्रति ग्राम | कि.ग्रा. प्रति हैक्टर | ग्राम प्रति घन मीटर |
| सूक्ष्म वनस्पति (माइक्रोफ्लोरा) | | | | |
| बैक्टीरिया | $10^{13}$–$10^{14}$ | $10^{8}$–$10^{9}$ | $10^{8}$–$10^{9}$ | 400–500 |
| एक्टिनोमाइसीटस | $10^{12}$–$10^{13}$ | $10^{7}$–$10^{8}$ | 400–5,000 | 400–500 |
| कवक | $10^{10}$–$10^{11}$ | $10^{5}$–$10^{6}$ | 1000–15000 | 100–1500 |
| शैवाल | $10^{9}$–$10^{10}$ | $10^{4}$–$10^{5}$ | 10–500 | 1.50 |
| पशुवर्ग | | | | |
| प्रोटोजोआ | $10^{9}$–$10^{10}$ | $10^{4}$–$10^{5}$ | 20–200 | 2–20 |
| सूत्रकृमि | $10^{6}$–$10^{7}$ | 10–$10^{2}$ | 10–150 | 1–15 |
| दीमक | $10^{3}$–$10^{6}$ | 1–10 | 5–150 | 0.5–1.5 |
| केंचुआ | 10–$10^{3}$ | – | 100––1500 | 10–150 |
| अन्य जीव | $10^{2}$–$10^{4}$ | – | 10–100 | 1–10 |

## केंचुआ

बारानी और घास वाली भूमि जहाँ पौधों के अवशेषों की मात्रा भी अधिक पायी जाती है, में केंचुआ की संख्या भी अधिक होती है। मिट्टी की ऊपरी सतह में केंचुओं का द्रव्यमान 110 से 1100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर होता है। भूमि में कम कार्बनिक पदार्थों की मात्रा, अधिक जुताई और कीटनाशकों के प्रयोग से केंचुओं की संख्या में गिरावट होती है। केंचुआ और अन्य अकशेरूकीय मिट्टी की ऊपरी सतह पर 10 से 500 टन मृदा प्रति हैक्टर प्रति वर्ष लाकर, मिट्टी के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। केंचुए के द्वारा निकाला गया अपशिष्ट, नाइट्रोजन, फास्फोरस, कैल्शियम तथा कार्बनिक पदार्थ का अच्छा स्रोत है। मरे हुए केंचुए के ऊतकों का विघटन बहुत तेजी से होता है क्योंकि इसमे प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

केंचुए के अपशिष्ट पदार्थ निकालने की दर 2700 टन प्रति हैक्टर प्रति वर्ष तक दर्ज की गयी है। यह जीव कार्बनिक और खनिज पदार्थों को मिट्टी में अच्छी तरह से मिश्रित कर देता है जिससे क्ले–बंधित कार्बन की मात्रा बढ़ती है। केंचुए वाली भूमि में सरंध्रता, जल धारण क्षमता व पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ती है। केंचुआ खेत पर उपलब्ध अवशेषों के पोषक तत्वों से परिपूर्ण वर्मीकम्पोस्ट भी बनाता है।

## दीमक

दीमक भी मृदा स्वास्थ्य को निम्नानुसार चार प्रकार से प्रभावित करती है:

(क) मिट्टी में टीले व चादर बनाकर मृदा प्रोफाइल में रूपांतरण करती है।

(ख) नीचे वाली मिट्टी को ऊपर लाकर मिट्टी सरंचना को प्रभावित करती है।

(ग) कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों की प्रकृति और वितरण को प्रभावित करती है।

(घ) मृदा में छोटी–छोटी भूमिगत नालियां बनाकर उचित जल निकास व नमी को बनाये रखती है। दीमक वाली मृदाओं में धनायन विनिमय क्षमता और विनिमय क्षार की मात्रा भी अधिक होती है।

## बैक्टीरिया

मिट्टी में बैक्टीरिया की बड़ी संख्या होती है और यह जीव कार्बनिक पदार्थों का तेजी से अपघटन करते हैं। इनके गुणन की तीव्र दर के कारण यह विभिन्न जैव–रासायनिक क्रियाओ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह क्रियाएं पौधों के पोषक तत्वों की उपलब्धता को नियंत्रित करती हैं। मिट्टी जीवाणु, वायुमंडलीय नाइट्रोजन का अमोनिकल रूप में स्थिरीकरण करके

मिट्टी में पौधों के लिए उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करते हैं तथा कुछ बैक्टीरिया पौधों की वृद्धि के लिए हार्मोन तथा कार्बनिक अम्ल का उत्पादन करके फास्फोरस व लौहे की घुलनशीलता को बढ़ाते हैं।

## एक्टिनोमाइसिट्स

एक्टिनोमाइसिट्स उन कार्बनिक पदार्थों का विघटन करती है जो जीवाणुओं और कवक से संभव नहीं होता है। एक्टिनोमाइसिट्स की बैक्टीरिया और कवको से पोषक तत्वों के लिए कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है इसलिए यह जीव जब कम काम करना शुरू करते हैं तब तेजी से अपघटन होने वाला कार्बनिक पदार्थ बैक्टीरिया व कवक के द्वारा उपयोग कर लिया जाता है। एक्टिनोमाइसिट्स का कार्बनिक पदार्थों से खाद बनाने में बहुत बड़ा योगदान होता है जब खेत में पहली वर्षा होती है तब भूमि में से एक गंध आती है वह एक्टिनोमाइसिट्स के द्वारा उत्पादित किये गये खुशबुदार वाष्पशील यौगिक के कारण होती है।

## कवक

कवक बारीक धागों के समान रचनाओं जैसा बना हुआ जीव है। इनके तन्तुओं को कवक तन्तु कहा जाता है और कवक तन्तुओं के सामूहिक नेटवर्क को कवक–जाल कहा जाता है। ये क्लोरोफिल रहित परपोषी जीव हैं जो कार्बनिक पदार्थ के अपघटन के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। कवक अम्लीय भूमियों में पौधों के अवशेषों का अपघटन करने में अधिक सक्रिय होते हैं। कुछ कवक पौधे की जड़ों के साथ एक सहजीवी संघ बनाकर कम गतिशील पोषक तत्वों के उद्ग्रहण में मदद करते हैं। कवक पौधों की जड़ों की आकारिकी को बदलकर, पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए जड़ों की सतह में वृद्धि करती है। मूलकवक में भी कवक तंतुओ की वजह से पोषक तत्वों की गतिशीलता बढ़ जाती है।

## शैवाल

मिट्टी में पाए जाने वाले शैवाल क्लोरोफिल युक्त स्वपोषी जीव हैं वे अपने विकास के लिए केवल कार्बनिक पदार्थ की आपूर्ति पर ही निर्भर नहीं होते हैं बल्कि अपना भोजन भी स्वयं बना लेते हैं। ये मिट्टी में अलग–अलग रंग में भी पाये जाते है जैसे कि धान के खेतो में नीली–हरी शैवाल वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है। शैवाल *(एनाबिना अजोला)*, ताजे पानी की फ़र्न *(एजोला)* के साथ एक सहजीवी संघ के रूप में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है। एजोला–जैव उर्वरक, मिट्टी में नाइट्रोजन की उपलब्धता व कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ाते हैं।

## प्रोटोजोआ

उपजाऊ मिट्टी में, प्रोटोजोआ की संख्या एक लाख प्रति ग्राम तक हो सकती है। यह जीव मुख्य रूप से कार्बनिक चक्र को प्रभावित करते हैं। प्रोटोजोआ की बैक्टीरिया पर परभक्षी प्रकृति के कारण बैक्टीरियल आबादी का नियंत्रण तथा पोषक तत्वों का स्थिरीकरण कर इनकी उपलब्धता को बढ़ाते हैं।

## सूत्रकृमि

सूत्रकृमि भी सड़ते हुए कार्बनिक पदार्थ को भोजन के रूप में उपयोग करते हैं या परजीवी के रूप में जीवित पौधों पर आश्रित रहते हैं। मिट्टी में इनकी संख्या कम होने के कारण ये कार्बनिक पदार्थ के अपघटन में बहुत अधिक महत्व नहीं रखते हैं।

## मृदा की जैव विविधता और जलवायु परिवर्तन

मिट्टी बायोटा भी पृथ्वी की जलवायु को नियमित और स्थिर करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। मुख्य रूप से मनुष्यों द्वारा जीवाश्म ईंधन के जलाने से पृथ्वी के वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते स्तर के परिणामस्वरूप वैश्विक तपन (ग्लोबल वार्मिंग) बढ़ रही है। पृथ्वी की सतह, समुद्र और वातावरण के बीच कार्बन के विनिमय की दर को कार्बन चक्र के रूप में जाना जाता है जो जलवायु परिवर्तन के संबंध में एक प्राथमिक मध्यस्थ सूचक बल है। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से हरे पौधे वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करते हैं तथा यह सर्वविदित है कि पेड़ों और जंगल में अवशोषित कार्बन वृक्ष संकूल द्रव्यमान (वुडी बायोमास) में एकत्रित होता है। लेकिन वास्तव में यह मिट्टी का कार्बनिक पदार्थ है जो कि वैश्विक कार्बन के लिए प्रमुख वैश्विक भंडार है। जीवाणु, कवक और अकशेरूकीय जीव आदि जो कि मिट्टी में पाए जाते हैं, वही कार्बन और नाइट्रोजन घटकों के स्थिरीकरण के लिए जिम्मेदार होते हैं तथा उन्हें पौधे के विकास के लिए उपलब्ध करवाते हैं।

## मृदा जैव विविधता का प्रबंधन

इसमें कोई दो मत नहीं है कि वर्तमान युग में मृदा जैव विविधता कमतर होती जा रही है। असंख्य जीवाणु उच्च जीवों के साथ सहजीवी रूप में रहते हैं। प्रचलित कृषि पद्धतियाँ मृदा जीवाणुओं पर काफी प्रभाव डालती है इसलिए, कृषि के लिए एक ऐसी एकीकृत पद्ध ति की आवश्कता है जो मिट्टी प्रक्रियाओं की जैविक दक्षता, मिट्टी उर्वरता और फसल उत्पादकता को बनाए रखे। मिट्टी जैव विविधता के सफल प्रबंधन के दृष्टिकोण से मिट्टी, पानी, हवा, पौधों, पशु और मनुष्यों सहित सभी संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता है।

कई प्रबंधन रणनीतियाँ मिट्टी में जीवों के आवास और भोजन श्रृंखला को बदलकर मिट्टी की गुणवत्ता में परिवर्तन करती हैं। विभिन्न मिट्टी के प्रकार और उपयोग के प्रत्येक संयोजन के लिए मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु अलग–अलग पद्धतियों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर मूंगफली की उत्पादन प्रणाली में मिट्टी जीवों की विविधता के प्रबंधन को पूर्णतया ध्यान में रखा गया है।

**निम्नांकित कृषि पद्धतियाँ मृदा जैव विविधता और इसके स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिये प्रभावी रहती हैं:**

- मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का नियमित उपयोग, मिट्टी की गुणवत्ता के कई पहलुओं से जुड़ा हुआ है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों, फसलों की जड़ों, पशु खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट खाद, और अन्य स्रोतों से प्राप्त होता है। मृदा जीवाणु कार्बनिक पदार्थ को जैविक खाद में बदल देते हैं जिससे मृदा की जल धारण क्षमता और पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार होता है और साथ ही साथ मृदा क्षरण में भी कमी आती है।
- उपयुक्त जुताई का सकारात्मक असर पड़ता है, लेकिन अधिक जुताई करने पर कार्बनिक पदार्थ में कमी के कारण मिट्टी की संरचना ख़राब हो जाती है। मिट्टी में लगातार एक निश्चित गहराई पर जुताई करने से कठोर परत बन जाती है। कम जुताई के तरीकों से मिट्टी की संरचना और मृदा जीवों की संख्या में कम गड़बड़ी होती है।
- कीटनाशक गैर लक्ष्य जीवों को भी नुकसान पहुँचा सकते हैं और उचित प्रबंध के अभाव में यह पानी और हवा को भी प्रदूषित कर सकते हैं। खाद और अन्य कार्बनिक पदार्थों का मिट्टी में दुरुपयोग या अधिक प्रयोग होने पर यह प्रदूषक भी हो सकते हैं। उर्वरक का सकारात्मक पक्ष यह है कि इससे पौधों के विकास के साथ ही मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा भी बढ़ती है।
- भूमि कवर बढ़ाएँ: अनावृत मिट्टी, हवा तथा पानी के कटाव और सूखने पर पपड़ी बनने के लिए अति संवेदनशील है। सतही आवरण, मिट्टी में जीवों के लिए उचित निवास स्थान प्रदान करता है। इसी प्रकार दीमक और केंचुआ पानी की उपलब्धता में सुधार कर सकते हैं। आवरण फसलें, बहुवर्षीय फसल अवशेष मिट्टी की सतह पर रखने से फसल समय की अवधि में वृद्धि करते हैं।
- पादप विविधता बढ़ाएँ: पादप विविधता कई कारणों से फायदेमंद है। प्रत्येक फसल की एक अनूठी जड़ संरचना तथा अवशेष होते हैं जिनका

(क)

(ख)

*मूंगफली की उत्पादकता में मृदा जीवाणु की विविधता की भूमिका*
*(क) प्रबंधित कृषि प्रणाली और (ख) कुप्रबंधित कृषि प्रणाली*

मिट्टी को स्वस्थ बनाने में मुख्य योगदान होता है मिट्टी जीवों की विविधता हानिकारक कीटों की आबादी को नियंत्रित करने के लिए मददगार होती है। विभिन्न कृषि क्रियाएं खरपतवारों और रोगों के दबाव को कम करती है। अलग–अलग फसलें लेने से पौधों, कीट और मिट्टी जीवों की विविधता में भी वृद्धि होती है।

- मृदा क्षरण से मिट्टी जीवों को होने वाली हानि को नियंत्रित किया जाना चाहिए।
- फसल चक्र मिट्टी की उस स्थिति को विकसित करता है जिसमे पौधों के रोगजनकों का विकास कम होता है, इसके अलावा जीवों की विविधता और मृदा स्वास्थ्य भी बना रहता है।
- प्रबंधन के तरीकों की क्षमता के अनुसार व्यावसायिक उत्पाद की उत्पादन क्षमता तय होती है साथ ही इसके समानांतर मिट्टी की जैविक उर्वरता क्षमता को भी बनाए रखना चाहिए ।
- उत्तम मृदा स्वास्थ्य के लिए आवश्यक मिट्टी की जैविक उर्वरता की बहाली हेतु पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए।
- दीमक के बिल में छिपने और खाने वाली गतिविधियाँ, मिट्टी की सख्त परत को कुछ हद तक तोड़ने में सहायक होती है।

## मिट्टी जैव विविधता के बेहतर प्रबंधन से लाभ

### आर्थिक लाभ

मृदा जैविक संसाधनों के प्रबंधन की उपयोग दक्षता बढाकर (विशेष रूप से कार्बन पदार्थों का अपघटन, पोषक तत्वों का चक्रण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण और पानी का भंडारण करके) उत्पादन में आने वाली लागत को कम किया जा सकता है। बेहतर मिट्टी जैव विविधता प्रबंधन के अंतर्गत पोषक तत्वों के चक्र को अधिक कुशल बनाकर और जड़ क्षेत्र से होने वाले उर्वरकों के निक्षालन को कम किया जा सकता है। जहाँ जीवों का एक विविध समूह सक्रिय है वहाँ पर कीट नियंत्रण के लिए कीटनाशकों की कम जरूरत होती है। इस तरह हम उर्वरकों व कीटनाशकों की बचत कर सकते हैं। मिट्टी की संरचना में सुधार से पौधों को पानी और पोषक तत्वों की उपलब्धता आसानी से हो जाती है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हर साल पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं जैसे जैविक अपशिष्ट निपटान, मिट्टी गठन, नाइट्रोजन स्थिरीकरण और जैव नियंत्रण के द्वारा कृषि पद्धतियों व मृदा जीवाणुओं से बहुत अधिक धनराशि बचा सकते हैं।

### पर्यावरण संरक्षण

मृदा जीव, रसायनों के हानिकारक प्रभाव को कम करने में सक्षम होते हैं अन्यथा ये हानिकारक पदार्थ भूजल या पानी की सतह तक पहुँच कर प्रदूषण कर सकते हैं। मृदा जीवाणुओं के संरक्षण और प्रबंधन के लिए कृषि रसायनों का कम उपयोग करना चाहिए। मृदा संरचना और धनायन विनिमय क्षमता को बढाकर भी प्रदूषण और भूमि क्षरण को कम किया जा सकता है।

### खाद्य सुरक्षा

मृदा जैविक प्रबंधन से कीटों और रोगों को नियंत्रित करके पौधों के विकास को बढ़ाकर फसलों की उपज और गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। मिट्टी की जैव विविधता, संसाधनो के उपयोग की दक्षता बढाकर और कम निवेश के साथ कृषि पारिस्थितिकी प्रणाली की स्थिरता को बढ़ाया जा सकता है जिससे विश्व की आबादी खासकर गरीबों की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके अलावा, कुछ मृदा जीवों को प्रोटीन स्रोत के रूप में विभिन्न मानव समुदायों द्वारा सेवन भी किया जाता है तथा कुछ जीवों को औषधीय उद्देश्यों के लिए भी उपयोग किया जाता है। दोनों प्रबंधित और अप्रबंधित स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता के लिए मिट्टी जैव विविधता केंद्रीय बिंदु है। प्रबंधन के तरीकों को बदलने से मिट्टी की गुणवत्ता में भी परिवर्तन होता है जिसका प्रभाव मिट्टी के जैविक समुदायों की गतिशीलता पर पड़ता है जो कि मृदा स्वास्थ्य का एक संवेदनशील संकेतक है। मिट्टी जैव विविधता के उचित प्रबंधन द्वारा मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करके खाद्य सुरक्षा को बेहतर बनाया जा सकता हैं।

**– समाप्त –**

# लवण प्रभावित क्षेत्रों में हरी खाद हेतु ढैंचा उगाएं एवं फसलों की पैदावार बढ़ाएँ

एस॰के॰ चौहान, आर॰बी॰ सिंह एवं आर॰एल॰ मीणा[1]
लवणीय मृदा एवं जल प्रबंध परियोजना
राजा बलवंत सिंह कृषि महाविद्यालय, बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश)
[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

हरी खाद सभी तरह की मृदा, जलवायु एवं परिस्थितियों में समृद्ध पोषक तत्व का कार्य करती है। इसके निरन्तर प्रयोग से भूमि का सुधार होता है। क्षारीय एवं लवणीय भूमियों के सुधार के कार्यक्रमों में ढैंचा की व्यापक खेती एवं खाद के लिए इसका उपयोग एक वरदान साबित हो सकता है। लवणग्रस्त भूमि सुधार कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए हरी खाद का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है। इससे न केवल मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है, बल्कि पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार होता है तथा साथ में आवश्यक पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जस्ता, लौहा आदि की उपलब्धता भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त भूमि सुधार की प्रक्रिया भी तीव्र होती है क्योंकि भूमि में हरी खाद के अपघटन से मुक्त हुआ कार्बनिक अम्ल, भूमि में उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट से कैल्शियम को विलयशील करके विनिमययोग्य सोडियम को प्रतिस्थापित करता है। इस प्रकार हरी खाद द्वारा मृदा की भौतिक दशा के सुधार के फलस्वरूप प्रतिस्थापित सोडियम निक्षालन द्वारा पौधों की जड़ों के नीचे बहाया जा सकता है। ढैंचा की हरी खाद से जिप्सम के असर को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है और भूमि सुधार के कार्य में तीव्रता लायी जा सकती है।

## ढैंचा एक परिचय

ढैंचा एक झाड़ीनुमा पौधा है जो फेबेसी वर्ग में आता है जिसका वैज्ञानिक नाम *सेसबेनिया एकुलिएटा* है। ढैंचा में पायी जाने वाली कोशिकाओं के रस का पीएच मान 4.0 होता है तथा इसकी राख में 34.2 प्रतिशत कैल्शियम ऑक्साइड होता है। यह पौधा मध्यम लवणीय भूमि में अच्छी तरह उगाया जा सकता है तथा क्षारीय जलभराव एवं सूखे को काफी समय तक सहन कर सकता है। ढैंचा के अपघटन से हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बनती है जो पानी में घुलकर अम्ल का कार्य करने लगती है जिससे भूमि में उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट घुलनशील कैल्शियम रूप में परिवर्तित होने के कारण भूमि का सुधार बहुत तेजी से होने लगता है।

## भूमि की तैयारी

जब ढैंचा की फसल को हरी खाद हेतु लगाया जाता है तो उस समय भूमि की ज्यादा तैयारी की आवश्यकता नहीं होती है इसके लिए एक जुताई गर्मी के मौसम में तथा उसके बाद एक या दो जुताई की आवश्यकता होती है तदुपरांत पाटा लगाकर भूमि को समतल कर लेते हैं।

## उर्वरकों एवं सुधारकों का प्रयोग

क्षारीय भूमि में यदि ढैंचा उगाना हो तो जिप्सम डालने से पहले उस भूमि की जांच करवाकर जिप्सम की आवश्यकता निकाल लेते हैं तथा इस आधार पर जिप्सम खेत में डाला जाता है। खेत में 8–10 दिनों तक बरसात के दौरान पानी का निक्षालन किया जाना चाहिए तथा इसके बाद खेत से पानी निकाल दें (खेत में पानी खड़ा करके रखें तथा लवणों का निक्षालन कर बहाएं) यदि क्षारीय भूमि आंशिक मात्रा में सुधर चुकी हो (जिसका पीएच मान 8.5 से 9.0 हो जाये) तो जिप्सम की आवश्यकता कम हो जाती है। इसके स्थान पर 40 कि॰ग्रा॰ फास्फोरस, सुपर फास्फेट के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है।

## बीज की मात्रा एवं बुआई

ढैंचा के बीज को बुआई से पहले रात भर पानी में भिगो देना चाहिए तथा तैयार खेत में हरी खाद लेने वाली फसल के लिए 25 से 30 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव विधि द्वारा बोना चाहिए। हरी खाद हेतु ढैंचा की फसल की बुआई का समय बरसात का मौसम रहता है। यदि किसान के पास भण्डारण की अच्छी व्यवस्था हो तो वह इस बीज को 3–4 वर्षों तक सुरक्षित रखकर प्रयोग में ला सकता है।

## सिंचाई

आगरा में 11 वर्षों तक लगातार क्षारीय जल से सिंचाई द्वारा 15 मिलीतुल्य प्रति लीटर अवशोषित सोडियम कार्बोनेट क्षारीयता के पानी से सिंचाई की गई। वर्षा के मौसम में कभी भी इस पानी द्वारा सिंचाई नहीं की गई। परन्तु 40–45 दिन के लम्बे अंतराल तक वर्षा न होने पर ढैंचा की फसल में एक सिंचाई कर देना आवश्यक है ताकि ढैंचा की पौध वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल असर न पड़े।

## अपघटन का समय

वर्षों के तर्जुबे से यह कहा जा सकता है कि ढैंचा की फसल को 50 से 52 दिन की अवस्था में जब फूल आने की शुरूआत हो उस समय मिट्टी पलटने वाले हल से अथवा ट्रैक्टर चालित डिस्क हैरो से 15 से 20 सेंमी. की गहराई में दबा देना चाहिए। जिस अवस्था में हम इस ढैंचा का अपघटन करते हैं उस समय यह फसल रसदार होती है साथ ही निम्न कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात के कारण अतिशीघ्र विघटित हो जाती है क्योंकि इस अवस्था में ढैंचा के पौधे पर जो शाखायें आ जाती है वह भी आसानी से सड़ जाती है। इन सब कारणों को देखते हुए यह अवस्था ढैंचा को दबाने के लिए उपयुक्त रहती है।

आर.बी.एस. कृषि महाविद्यालय बिचपुरी, आगरा स्थित लवणीय भूमि का प्रबंध एवं कृषि में खारे पानी की परियोजना के अंतर्गत एक प्रयोग लगातार 5 वर्षों तक तथा दूसरा 6 वर्षों तक चक्रीय सिंचाई पर किया गया जिसके परिणाम तालिका 1 में दर्शाये गये हैं।

खरीफ ऋतु में 5 वर्ष तक हरी खाद के लिए ढैंचा उगाया गया तथा इस प्रयोग में ढैंचा (हरी खाद)–आलू–सूरजमुखी फसल चक्र लिया गया। जल की अवशोषित सोडियम कार्बोनेट क्षारीयता 15 मिलीतुल्य प्रति लीटर थी। तालिका 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ढैंचा के हरे भाग की सबसे अधिक पैदावार नहरी जल तथा सबसे कम क्षारीय जल की सिंचाई में प्राप्त हुई। साथ ही वर्षा आधारित ढैंचा की पैदावार में सिंचाई का उपयोग नहीं किया गया तथा इस फसल को 51–52 दिन की अवस्था में प्रति वर्ष अपघटन के लिए डिस्क हैरो से मिट्टी में मिला दिया गया था। इसके प्रयोग से मृदा का पीएच मान तथा विनिमययोग्य सोडियम प्रतिशत प्रत्येक फसल चक्र के बाद कम हो जाता था।

एक अन्य प्रयोग 6 वर्षों तक ढैंचा (हरी खाद)–आलू–सूरजमुखी में क्षारीय जल (अवशोषित सोडियम कार्बोनेट क्षारीयता 15 मिलीतुल्य प्रति लीटर) द्वारा सिंचाई पर किया गया तथा इसके परिणाम तालिका 2 में दर्शाए गए हैं। नतीजों के अनुसार नहरी जल वाले उपचार में प्रतिवर्ष एवं औसत आधार पर ढैंचा के हरे भाग की उपज सबसे अधिक (19.9 टन प्रति हैक्टर) एवं क्षारीय जल द्वारा सिंचाई वाले उपचार में सबसे कम (6.9 टन प्रति हैक्टर) प्राप्त हुई थी। प्रदर्शन के 6 वर्ष के आंकड़ों का आलू, सूरजमुखी पर प्रभाव देखा तो पाया गया कि जिन उपचारों में क्षारीय जल अधिक मात्रा में उपयोग में लाया गया था उनमें ढैंचा (हरा भाग) की उपज भी कम आई लेकिन पीएच मान एवं विनिमय योग्य सोडियम

**तालिका 1 : क्षारीय एवं नहरी जल की सिंचाई में ढ़ैंचा (हरे भाग) की पैदावार**

| उपचार | ढैंचा के हरे भाग की उपज (टन प्रति हैक्टर) | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1999 | 2000 | 2001 | 2002 | 2003 | औसत | संबंधित पैदावार (%) |
| नहरी जल | 24.0 | 25.3 | 21.5 | 20.6 | 20.1 | 22.3 | 100 |
| क्षारीय जल | 17.9 | 15.5 | 11.2 | 8.1 | 7.2 | 11.9 | 53.2 |
| 1 नहरी : 1 क्षारीय | 23.1 | 24.1 | 19.6 | 19.5 | 19.7 | 21.2 | 95.1 |
| 2 नहरी : 2 क्षारीय | 21.9 | 23.0 | 19.2 | 18.9 | 18.7 | 20.3 | 91.2 |
| 2 क्षारीयः 2 नहरी | 18.9 | 20.2 | 17.0 | 17.6 | 17.0 | 18.2 | 81.5 |
| 4 क्षारीयः 2 नहरी | 17.8 | 17.3 | 13.8 | 12.8 | 12.1 | 14.8 | 66.3 |
| नहरी (आलू): क्षारीय (सूरजमुखी) | 21.2 | 19.3 | 18.5 | 18.3 | 18.2 | 19.1 | 85.8 |
| 2 नहरी : 1 क्षारीय | 21.3 | 22.8 | 19.1 | 18.8 | 18.9 | 20.2 | 90.5 |
| 1 नहर : 2 क्षारीय | 20.7 | 21.2 | 18.0 | 18.3 | 17.9 | 19.2 | 86.2 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 0.8 | 1.2 | 1.0 | 1.0 | 0.7 | 0.9 | – |

### तालिका 2 : विभिन्न उपचारों का ढैंचा (हरा भाग) की उपज पर प्रभाव

| उपचार | ढैंचा के हरे भाग की उपज (टन प्रति हैक्टर) | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 2003 | 2004 | 2005 | 2006 | 2007 | 2008 | औसत |
| नहर जल | 20.1 | 19.1 | 19.6 | 19.9 | 20.0 | 20.9 | 19.9 |
| 1 वर्ष नहरी : 2 वर्ष क्षारीय | 19.7 | 17.9 | 16.7 | 17.3 | 17.6 | 18.5 | 17.9 |
| 2 वर्ष क्षारीयः 1 वर्ष नहरी | 18.7 | 17.0 | 17.2 | 17.1 | 17.3 | 17.2 | 17.4 |
| 2 वर्ष नहरीः 1 वर्ष क्षारीय | 17.0 | 16.8 | 16.9 | 16.6 | 16.7 | 16.9 | 16.8 |
| 1 वर्ष क्षारीयः 2 वर्ष नहरी | 12.1 | 13.0 | 17.9 | 12.8 | 17.8 | 16.8 | 15.1 |
| क्षारीय (आलू) : नहरी सूरजमुखी) | 18.2 | 14.7 | 17.9 | 17.5 | 17.7 | 18.3 | 17.4 |
| मिश्रित (1 भाग नहरी + 2 भाग क्षारीय) | 17.9 | 16.8 | 16.4 | 17.0 | 17.2 | 17.6 | 17.2 |
| मिश्रित (2 भाग नहरी + 1 भाग क्षारीय) | 18.9 | 17.8 | 17.6 | 17.8 | 17.9 | 18.5 | 18.1 |
| क्षारीय जल | 7.2 | 6.8 | 6.7 | 6.8 | 6.9 | 7.5 | 6.9 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 1.0 | 0.7 | 0.7 | 1.0 | 1.1 | 1.3 | – |

प्रतिशत जो इन दोनों फसलों में क्षारीय जल द्वारा बढ़ जाती थी वह ढैंचा को हरे खाद के रूप प्रयोग करने से कम हो गई। इस प्रकार इस फसल चक्र द्वारा उचित पैदावार प्राप्त की जा सकती है। अतः क्षारीयता वाले क्षेत्रों में ढैंचा हरी खाद के रूप में डालना लाभदायक है।

## ढैंचा की हरी खाद के लाभ

- ढैंचा के हरे भाग के सड़ने से निकलने वाली हाइड्रोजन सल्फाइड व कार्बन डाईआक्साइड गैस पानी के साथ मिश्रित होकर गंधक व कार्बोनिक अम्ल बनाती है जो क्षारीय मृदा के कैल्शियम को घुलनशील बनाता है जिससे भूमि सुधार का कार्य तेजी से होने लगता है।
- ढैंचा भूमि सुधार के लिए अति लाभदायक फसल है क्योंकि इसकी लवणीय एवं क्षारीय सहनशीलता बहुत अधिक होती है साथ ही मिट्टी की ऊपरी सतह से वाष्पीकरण के द्वारा लवणों को एकत्रित होने से रोकता है।
- ढैंचा की जड़ें व्यापक रूप से सुदृढ़ होने के कारण निक्षालन की क्रिया को बहुत तेजी से सहज बनाती है, मिट्टी की पारगम्यता बढ़ जाती है जिससे लवणों को अधिक से अधिक मात्रा में निक्षालित किया जा सकता है।
- इस फसल को हरी खाद के रूप में प्रयोग में लाने से मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है तथा वायु एवं प्रकाश का संचार भी सुचारू रूप से होने लगता है साथ ही साथ जल निकास भी सुगम हो जाता है।
- ढैंचा की फसल को हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से मृदा का पीएच मान कम हो जाता है जिससे आगामी फसल को कैल्शियम, फास्फोरस तथा सभी सूक्ष्म पोषक तत्व आसानी से प्राप्त हो जाते हैं।
- ढैंचा एक दलहनी फसल होने के कारण इसकी जड़ों में छोटी–छोटी गांठे पाई जाती है इन गांठों में पाये जाने वाले जीवाणु वायुमंडलीय नाईट्रोजन को अपने अंदर एकत्रित करते हैं जिससे मृदा में हरी खाद के रूप में इसे प्रयोग करने पर नाईट्रोजन का स्थिरीकरण हो जाता है।
- क्षारीय जल द्वारा सिंचाई वाले और क्षारीय मृदा में 50 दिन की फसल से लगभग 20 टन प्रति हैक्टर हरे भाग का उत्पादन हो जाता है जिससे लगभग 95 से 115 कि॰ग्रा॰ नाईट्रोजन मृदा को मिल जाती है। अतः जो किसान ढैंचा को हरी खाद के रूप में प्रयोग करते हैं, उनकी खेत की मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है जिससे मृदा की उर्वरता भी बढ़ती है तथा जिस क्षेत्र में मृदा क्षारीयता से ग्रसित है उनका सुधार भी हो जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि खराब जमीन पर भी ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग करने से रबी के मौसम में, गेहूँ, जौ, सरसों तथा सब्जियाँ आदि आसानी से उगाकर अधिकाधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

– समाप्त –

# फसल उत्पादन में सल्फर का महत्व

रामेश्वर लाल मीणा, बाबू लाल मीणा, गजेन्द्र एवं सुनील कुमार अम्बष्ट
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

सल्फर की पहचान नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश के साथ चौथे आवश्यक पोषक तत्व के रूप में की जाती है। वर्ष दर वर्ष सल्फर की कमी बढ़ती जा रही है जोकि फसल की पोषक तत्व उपयोग क्षमता, उपज एवं उत्पादन की गुणवत्ता तथा किसानों की आर्थिक कमाई को प्रभावित करती है।

1990 के प्रारंभिक वर्षों में यह ज्ञात हुआ कि भारतवर्ष में लगभग 130 जिलों की भूमि सल्फर की कमी से ग्रस्त है। अनुसंधान परिणामों के अनुसार अब लगभग 240 जिले सल्फर तत्व की कमी से ग्रसित हैं। मृदा के नमूनों का परीक्षण करने पर लगभग 40–45 प्रतिशत नमूनों में सल्फर का स्तर निर्धारित आवश्यक मात्रा से कम पाया गया यानि कि इनमें सल्फर की कमी थी। इसके अतिरिक्त 30–35 प्रतिशत मृदा में सल्फर की कमी आवश्यक मात्रा स्तर के करीब थी जिनमें सतत् फसल उत्पादन के लिए सल्फर का प्रयोग अति आवश्यक है।

इस प्रकार सल्फर संतुलित उर्वरक का एक बहुत आवश्यक तत्व है, क्योंकि सल्फर की कमी वाले क्षेत्रों में संस्तुत मात्रा में केवल एन.पी.के. देने पर भी अच्छी उपज प्राप्त नहीं की जा सकती। इसके लिये ठोस उपाय करने की जरूरत है जिससे व्यापक रूप से फैली सल्फर की कमी को समय रहते पूरा किया जा सके तथा किसान अच्छी पैदावार ले सकें तथा अपने कृषि निवेश पर अधिक से अधिक लाभ कमा सकें।

## पौधों में सल्फर का महत्व

पौधों को 17 आवश्यक पोषक तत्वों की जरूरत होती है तथा सल्फर उनमें में से एक है। सल्फर बिना किसी अपवाद के सभी फसलों की वृद्धि व विकास के लिये आवश्यक तत्व है। पौधे की सल्फर की आवश्यकता जड़ों द्वारा सल्फेट रूप में सल्फर के अवशोषण द्वारा पूरी की जाती है। अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की भांति सल्फर द्वारा पौधों में कुछ विशेष कार्य निष्पादित किया जाता है इसलिये सल्फरयुक्त उर्वरक प्रयोग द्वारा सल्फर की कमी पूरी करना अत्यन्त आवश्यक है।

## पौधों में सल्फर के आवश्यक कार्य

- पर्णहरित (क्लोरोफिल) पदार्थ, जोकि पत्तियों में हरित तत्व होता है, को बनाना। इस पदार्थ से ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सम्पन्न होती है।
- प्रकाश संश्लेषण द्वारा पौधे स्टार्च, शर्करा, तेल, वसा, विटामिन तथा अन्य महत्वपूर्ण यौगिक बनाते हैं।
- अमीनो अम्ल, प्रोटीन उत्पादन के आधारीय अवयव है तथा पौधों में लगभग 90 प्रतिशत सल्फर, सिस्टीन, सिस्टाईन व मिथियोनिन आदि अम्लों में विद्यमान होता है।
- तैलीय फसलों में तेल संश्लेषण प्रक्रिया उत्प्रेरक आधार अमीनो अम्ल के लिए सल्फर एक आवश्यक घटक है।
- सल्फर उन एन्जाइम को सक्रिय करता है जोकि पौधे में जैव रासायनिक क्रियाओं के संतुलन के लिये आवश्यक होते हैं।
- सल्फर फसल की उपज बढ़ाने के साथ उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करता है जिससे उत्पाद का उच्च बाजार भाव मिलता है।
- पर्याप्त सल्फर उपलब्ध होने पर विशेष रूप से फसल की गुणवत्ता, बीज में प्रोटीन व तेल का प्रतिशत, मील व बेकिंग के लिये अनाज की गुणवत्ता, सूखे नारियल गिरी (खोपरा) व तंबाकू की गुणवत्ता तथा चारे का पोषक मूल्य आदि में सुधार आता है।

## फसलों में सल्फर की कमी के लक्षण

जब भी बढ़ते हुये पौधों में सल्फर का स्तर आवश्यक निम्नतम स्तर से नीचे गिरता है तो सल्फर की कमी के लक्षण दिखने लगते हैं (तालिका 1)। इन लक्षणों का

**तालिका 1 : पौधों में 45–55 दिन की अवस्था पर सल्फर का आवश्यक स्तर**

| शुष्क पदार्थ में सल्फर का प्रतिशत | | | |
|---|---|---|---|
| **फसल** | **कम** | **मध्यम** | **पर्याप्त** |
| चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा | 0.10–0.20 | 0.20–0.30 | >0.30 |
| मूंगफली, सरसों, सोयाबीन, चावल, बैंगन, ककड़ी | 0.10–0.25 | 0.25–0.40 | >0.40 |
| सूरजमूखी, अलसी | 0.25–0.35 | 0.35–0.55 | >0.55 |
| मटर, चना, मसूर | 0.15–0.45 | 0.45–0.75 | >0.75 |
| आलू, फूलगोभी, पालक | 0.30–0.40 | 0.40–0.35 | >0.70 |

प्रकट होना एक गंभीर अवस्था दर्शाता है क्योंकि फसल की उपज इन लक्षणों के प्रकट नहीं होने पर भी घट सकती है।

कई मायनों में सल्फर की कमी के लक्षण भी नाइट्रोजन के समान होते हैं जैसेकि पत्तियाँ का पीला पड़ना या हल्का हरा होना। परन्तु नाइट्रोजन के विपरीत सल्फर की कमी के लक्षण सबसे पहले नई पत्तियों पर दिखते हैं तथा नाइट्रोजन प्रयोग के बाद भी रहते हैं। कपास, तंबाकू तथा नींबू वर्गीय फलों में पुरानी पत्तियाँ सबसे पहले प्रभावित होती है। सल्फर की कमी वाले पौधे छोटे व कमजोर होतें है तथा इनका तना भी छोटा व पतला होता है। पौधों की वृद्धि रूक जाती है, अनाजों में पकाव देर से होता है, फल पूरी तरह नहीं पकते तथा रंग भी हल्का बना रहता है। दलहनी फसलों में जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण घट जाता है तथा चारा फसलों में नाइट्रोजन–सल्फर का अनुपात अनावश्यक रूप से बढ़ जाता है जिससे पौष्टिकता घटती है।

## कुछ फसलों में सल्फर की कमी के विशेष लक्षण

### चावल व गेहूँ

छोटे जोड के कारण पत्तियाँ छोटी–छोटी रह जाती है तथा नई पत्तियाँ पीली हो जाती है व इनका आकार भी घट जाता है। फसल जैविक दशा से उत्पादक अवस्था में देरी से आती है। इसके अतिरिक्त पौधों में कम दाने बनने के कारण उत्पादन प्रभावित होता है।

### मक्का

नई पत्तियों में पूरी पत्ती में शिराओं के बीच में पीलापन दिखने लगता है बाद की अवस्था में तने के आधार व पत्ती के किनारों पर लालपन आने लगता है।

### चना

सल्फर की कमी वाले पौधे सीधे होते हैं। नई पत्तियाँ अपरिपक्व अवस्था में ही सूखकर झड़ने लगती है। अंत में संपूर्ण पर्ण समूह पीला पड़ जाता है। गाँठ बनना व जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण अवरूद्ध होने के साथ–साथ बीज बनने में भी रूकावट आती है।

### उड़द

पत्तियों का पीलापन (क्लोरोसिस) नई पत्तियों के ऊपरी भाग से शुरू होकर किनारों की और फैलता है। सल्फर की कमी के बाद आने वाली पत्तियाँ गंभीर रूप से पीली होने लगती है। तना पतला व लकड़ी जैसा हो जाता है। पौधा झाड़ीनुमा आकृति बना लेता है।

### मूँग

पौधे छोटे, शाखायें कमजोर तथा झाड़ीनुमा हो जाती है। फूल काफी कम हो जाते हैं तथा फलियों में बीज सिकुड़ने लगते हैं।

### मटर

नई पत्तियाँ पीली होकर शिराओं के बीच में पीलापन हो जाता है जो नई, मध्यम व पुरानी पत्तियाँ को प्रभावित करता है। जड़ों में गांठ बनना जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण, कम फूल आना व उपज घट जाती है।

### अरहर

नई व मध्य पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, शाखाएं, पत्ती का आकार व फूल आना कम हो जाता है, फूलों का रंग हल्का पीला रह जाता है तथा वे जल्दी झड़ जाते हैं। फली का बनना व बीज का विकास रूक जाता है।

### मूँगफली

नये पौधे सामान्य से छोटे, पीले तथा ज्यादा सीधे दिखने लगते हैं। पुरानी पत्तियाँ हरी रह सकती हैं। नई पत्तियों में मुख्य शिरा के आसपास पीलापन आ जाता है। जैविक

नाइट्रोजन स्थिरीकरण, गांठ बनना व फली बनना अवरूद्ध होकर बीजों का पकाव देरी से होता है।

### सरसों

पत्तियाँ मुड़ने लगती हैं तथा तने व पत्ती के अन्दर की ओर लालपन हो जाता है। फूल अपरिपक्व अवस्था में झड़ जाते हैं जिससे फली नहीं बन पाती। सल्फर की कमी से बीज में तेल की मात्रा कम होने से आर्थिक लाभ कम प्राप्त होता है।

### अलसी

पत्तियों का पीलापन व सबसे नई पत्ती का शिखर से मुड जाना, अपरिपक्व अवस्था में सूखना सल्फर की कमी के लक्षण हैं। क्लोरोसिस धीरे–धीरे पुरानी पत्तियों में फैलता है। तना पतला व कम शाखाओं का हो जाता है। पुष्प कलिकायें कम हो जाती है तथा खुलती नहीं हैं।

### कपास

नई पत्तियाँ, पीली तथा तना लाल दिखने लगता है। कपास की फसल में पुरानी पत्तियाँ पहले प्रभावित होती हैं।

### केला

नई पत्तियों में हरे रंग की कमी होने लगती है तथा टिश्यू पीले पड़ने लगते हैं लेकिन धीरे–धीरे हरा रंग वापस आने लगता है जैसे–जैसे कमी का स्तर गिरने लगता है नई पत्तियाँ पीली सफेद हो जाती हैं। यदि सल्फर की कमी लगातार रहती है तो क्लोरासिस साफ नजर आता है तथा शिराओं के बीच में पीली धारियाँ दिखने लगती हैं, वृद्धि अवरूद्ध होकर छोटे फल पैदा होते हैं।

## फसलों में सल्फर की आवश्यकता

अच्छी पादप वृद्धि व उत्पादन के लिये पौधे में पर्याप्त मात्रा में सल्फर उपलब्ध हो तभी पौधे कार्बोहाइड्रेटस, प्रोटीन, तेल व विटामिन आदि का अपनी क्षमता के अनुसार उत्पादन कर सकते हैं।

**तालिका 2 : विभिन्न फसलों में सल्फर एवं नाइट्रोजन, फास्फोरस, कैल्शियम ग्रहण की तुलना**

| फसल | उपज (कि.ग्रा. प्रति है.) | कुल ग्रहण (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | नाइट्रोजन | फास्फोरस | कैल्शियम | सल्फर |
| गेहूँ | 3900 | 137 | 26 | 137 | 12 |
| चावल (खरीफ) | 2682 | 56 | 12 | 59 | 7 |
| चावल (रबी) | 3131 | 64 | 11 | 67 | 10 |
| मक्का | 2132 | 61 | 10 | 51 | 7 |
| चना | 1500 | 91 | 6 | 49 | 13 |
| मसूर | 2000 | 114 | 13 | 36 | 6 |
| अरहर | 1200 | 85 | 8 | 16 | 9 |
| उड़द | 600 | 45 | 8 | 18 | 5 |
| मूंग | 870 | 82 | 13 | 90 | 7 |
| मूंगफली | 1900 | 121 | 19 | – | 15 |
| सरसों | 2596 | 131 | 25 | 133 | 45 |
| सोयाबीन | 2500 | 125 | 43 | 101 | 22 |
| सूरजमुखी | 2308 | 114 | 26 | 141 | 17 |
| कुसुम | 1909 | 74 | 7 | 35 | 24 |
| तिल | 1200 | 62 | 24 | 64 | 14 |
| अलसी | 1600 | 96 | 13 | 72 | 9 |
| गन्ना | 87500 | 180 | 29 | 270 | 26 |
| चाय | 1000 | 110 | 16 | 37 | 10 |
| तंबाकू | 2845 | 55 | 6 | 64 | 8 |
| रिजका | 91900 | 755 | 79 | 669 | 46 |
| चारा घास | 19970 | 187 | 29 | 284 | 39 |

ऐसी भूमि जिसमें सल्फर 0.20 प्रतिशत से कम हो, सल्फर की कमी वाली मानी जाती है। फसलों द्वारा सल्फर की ग्रहण क्षमता फसल के प्रकार एवं उपज के अनुसार 5 से 40 कि॰ग्रा॰ तक हो सकती है। सल्फर ग्रहण, नाइट्रोजन ग्रहण का 9–15 प्रतिशत तथा फास्फोरस ग्रहण के समतुल्य होता है (तालिका 2)।

**विभिन्न फसलों में सल्फर ग्रहण की सीमा निम्न प्रकार है:**

अनाज वाली फसलें : 3–4 किलोग्राम (सीमा 1–6 किलोग्राम)

दलहनी फसलें : 8 किलोग्राम (सीमा 5–13 किलोग्राम)

तिलहन फसलें : 12 किलोग्राम (सीमा 5–20 किलोग्राम)

प्रायः यह देखा गया है कि सल्फर तत्व की जितनी आवश्यकता है किसान उससे लगभग आधी मात्रा ही फसलों में डालते हैं। परिणामस्वरूप मृदा में सल्फर की शुद्ध कमी हो जाती है। मृदा सल्फर भंडार का शोषण रोकना, मृदा की उर्वरता बनाये रखने तथा फसल उत्पादकता का स्तर ऊँचा बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है।

## मृदा में सल्फर की कमी वाले क्षेत्र

भारत की मृदा में सल्फर की कमी व्यापक रूप से फैली हुई है तथा लगातार कई क्षेत्रों में सल्फर की कमी रिपोर्ट की जा रही है। वर्ष 1990–2000 दशक के प्रारंभ में लगभग 130 जिलों में सल्फर की कमी का आंकलन किया गया था। तदुपरांत भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा 2006 में किये गये सर्वे के अनुसार हमारे देश में सल्फर की कमी एक व्यापक समस्या के रूप में उभरी है (तालिका 3)।

**तालिका 3 : भारत के विभिन्न जिलों में सल्फर की कमी का विस्तार**

| | सल्फर की कमी वाले जिले | | |
|---|---|---|---|
| **राज्य** | **20 प्रतिशत से कम नमूनों में कमी** | **20–40 प्रतिशत नमूनों में कमी** | **40 प्रतिशत से ज्यादा नमूनों में कमी** |
| आंध्र प्रदेश | करीमनगर (गुंटूर, प्रकाशम, मेडक, विजयानगरम, श्रीकाकुलम, अनंतपुर, पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी | रंगारेड्डी, वारंगल, विशाखापट्टनम | आदिलाबाद, कुडप्पा, नालगोड़ा, चित्तूर, रंगारेड्डी, महबूबनगर, मेडक |
| असम | चाय बागानों वाले सभी क्षेत्र | | |
| बिहार | मुजफ्फरपुर, भागलपुर, जहानाबाद, मुंगेर, मधुबनी, दरभंगा, वैशाली | समस्तीपुर, गोपालगंज, गया, पटना, दरभंगा, औरंगाबाद, सहरसा, पश्चिमी चंपारण, भोजपुर, नालंदा, रोहतास | लक्ष्मीपुर, नवादा, समस्तीपुर |
| छत्तीसगढ़ | बिलासपुर, दुर्ग | रायपुर | राजनादगांव |
| गुजरात | सुरेन्द्रनगर, राजकोट | अहमदाबाद, भरूच, भावनगर, जामनगर, खेड़ा, कच्छ, सूरत, बडोदरा, वलसाड, बनासकांठा | अमरेली, भरूच, जूनागढ़, मेहसाना, पंचमहल, साबरकांठा |
| हरियाणा | रोहतक, रेवाड़ी, कुरूक्षेत्र, सिरसा | गुडगांव, जींद, करनाल, कैथल, महेन्द्रगढ़, भिवानी, पानीपत, सोनीपत | अम्बाला, फरीदाबाद, हिसार |
| हिमाचल प्रदेश | सेप्रून घाटी | हमीरपुर, कांगड़ा, ऊना, शिमला | कांगड़ा |
| झारखंड | – | पलामू, दुमका | रांची, पश्चिमी सिंहभूम, पूर्वी सिंहभूम, दुमका, लोहारदगा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्नाटक | कोलार, बैंगलोर, धारवाड़, कॉफी उत्पादन क्षेत्र | शिमोगा, मालप्रभा क्षेत्र, धारवाड़ | दक्षिण कन्नड़, उत्तर कन्नड़, मलनाड़ |
| केरल | तिरूअनंतपुरम, किलोन, कालीकट, कासरगोड | त्रिशुर | इडडूकी, पालघाट, त्रिशूर, कोलम, तिरूअनंतपुरम |
| मध्य प्रदेश | नरसिंहपुर, मांडला, बेतुल | भोपाल, जबलपुर, भिंड, गुना, सतना, सागर, रतलाम, ग्वालियर, मुरैना | देवास, उज्जैन, सियोनी, मंदसौर, धार, खंडवा, मुरैना, विदिशा, बालाघाट, भिंड, ग्वालियर, सिद्धी, सिहोर, इन्दौर, छिंदवाड़ा |
| महाराष्ट्र | धूले, रत्नागिरी, पूणे, लातुर, जलगांव, वर्धा, कोल्हापुर, उस्मानाबाद, सतारा, सोलापुर | औरंगाबाद, चंद्रपुर, भंडारा, रायगढ़, नांदेड़, कोल्हापुर, उस्मानाबाद, परभनी, नासिक, सांगली, अहमदनगर | अहमदनगर, रत्नागिरी |
| ओड़ीसा | क्योंझर, फूलबनी, बालासोर | संबलपुर, बालासोर, पुरी, धेनकनाल, कटक, कालाहांडी, कुर्दा | कालाहांडी, बारगढ़, संबलपुर, धेनकनाल |
| पंजाब | फिरोजपुर, फरीदकोट, पटियाला, भटिंडा | संगरूर, कपूरथला, जालंधर | रोपड़, लूधियाना, अमृतसर, होशियारपुर |
| राजस्थान | जयपुर, जोधपुर, नागौर, बीकानेर | भरतपुर, श्रीगंगानगर, उदयपुर, कोटा, झुंझुनु | चितौडगढ़, अलवर, धोलपुर, बांसवाड़ा, दौसा, श्रीगंगानगर, टोंक, जयपुर |
| तमिलनाडू | थंजावुर, तुतीकोरिन, रामनाथपुरम् | कोयम्बटूर, इरोड़, नीलगिरी, धर्मपुरी, त्रिची, डिंडीगुल, कन्याकुमारी | मदुरई, वैल्लोर, सेलम, कुडडालोर |
| उत्तर प्रदेश | जालौन, फरूखाबाद, मेरठ, गाजियाबाद | इलाहाबाद, सीतापुर, झांसी, हमीरपुर, ललितपुर, अलीगढ़, बुलंदशहर, फतेहाबाद, फिरोजाबाद, मैनपुरी, आगरा, मुरादाबाद, जेपी नगर | लखनऊ, हरदोई, वाराणसी, कानपुर, गाजीपुर, मिर्जापुर, बांदा, बलिया, प्रतापगढ़, फैजाबाद, रायबरेली, उन्नाव, भदोही, फतेहपुर, सोनभद्र, अलीगढ़, झांसी, गोरखपुर |
| उत्तराखंड | उधमसिंहनगर, अलमोड़ा | – | हरिद्वार, नया टिहरी |
| पश्चिम बंगाल | हावड़ा, उत्तरी 24 परगना | बीरभूम, बर्धवान, बांकुरा, मुर्शिदाबाद, हुगली | जलपाईगुड़ी, नाडिया, पुरुलिया, मिदनापुर |

## सल्फर की कमी के प्रमुख कारण

- बढ़ते हुये कृषि उत्पादन (1980 में अनाज उत्पादन 80 मिलियन टन, 2012 में 262 मिलियन टन) के कारण भूमि से लगातार सल्फर का दोहन।
- मिट्टी में सल्फर स्तर में बढ़ती कमी केवल अनाज द्वारा ही नहीं होती बल्कि चारा/फूस/पुआल द्वारा भी दोहन में बढ़ोतरी हो रही है।
- दलहनी व तिलहनी फसलों (जिनकी प्रति इकाई बीज उत्पादन के लिए सल्फर की ज्यादा आवश्यकता

होती है) में सामान्य आवश्यकता से कम उर्वरकों का उपयोग भी सल्फर की कमी का एक कारण है। इन फसलों के अंतर्गत कुल 51 मिलियन हैक्टर (27 प्रतिशत) क्षेत्रफल आता है।

- वर्तमान में फसलों द्वारा सल्फर ग्रहण एवं सल्फर उर्वरकों के उपयोग के नकारात्मक सल्फर संतुलन के कारण मृदाओं में सल्फर की कमी।
- अधिकांशतः सल्फर रहित उर्वरकों के प्रयोग जैसे यूरिया, डी.ए.पी. एम.ओ.पी. तथा एन.पी.के. का तरीका सल्फर दोहन को बढ़ा देता है।
- सतही सिंचाई तथा भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में सल्फर का मृदा से निक्षालन भी इसकी कमी का एक कारण है।

आज के सघन कृषि उत्पादन में अनुपातिक सल्फर बढ़ोतरी के बिना केवल एन.पी.के. के ज्यादा उपयोग पर बल दिया जा रहा है। इसके कारण मृदा में सल्फर का अनुपात बिगड़ गया है। नाइट्रोजन व फास्फोरस का सल्फर की तुलना में असंतुलित उपयोग टिकाऊ कृषि विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। जिसके कारण फसल उपज, उत्पाद गुणवत्ता, पोषक तत्व उपयोग क्षमता तथा आर्थिक आय एवं खाद्यपूर्ति आदि भी प्रभावित हो रहे हैं।

## सुझाव तथा ध्यान देने योग्य बातें

- एन.पी.के. के साथ–साथ सल्फर को चौथे आवश्यक पोषक तत्व का दर्जा प्राप्त होना चाहिये।
- सल्फर तत्व की और अधिक उपेक्षा न की जाये। संतुलित तथा दक्ष उर्वरक प्रयोग द्वारा फसल उत्पादन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये सल्फर आवश्यक है।
- सल्फर की कमी वाली मिट्टी में संभावित उपज, श्रेष्ठ गुणवत्ता तथा उच्च लाभ तभी संभव है जब सल्फर के प्रयोग को किसानों द्वारा उवर्रक प्रयोग योजना में सम्मिलित किया जाये।
- विभिन्न क्षेत्रों की मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में मिट्टी में सल्फर की जाँच की सुविधाएँ उपलब्ध हों।
- यदि मृदा जाँच उपलब्ध नहीं हो तो भी खेती की पूर्ण जानकारी व सल्फर रहित उवर्रक प्रयोग के आधार पर भी सल्फर की कमी का आंकलन लगा सकते हैं। इसका सत्यापन खेत में सल्फर के साथ तथा सल्फर के बिना फसल उगाकर किया जा सकता है।
- फसल उगाने की पद्धतियों में सल्फर का उपयोग सम्मिलित किया जाना चाहिए।

**– समाप्त –**

यह महत्वपूर्ण नहीं कि आपके जीवन में कितने दिन है,
बल्कि यह महत्वपूर्ण है कि आपके दिनों में कितना जीवन है।

# क्षारीय स्थितियों में धान की सीधी बुआई द्वारा परंपरागत रोपाई विधि की तुलना में अधिक आय एवं संसाधन संरक्षण

रणबीर सिंह, आर.एस. त्रिपाठी, एस.के. चौधरी, डी.के. शर्मा, पी.के. जोशी, एस.के. शर्मा,
प्रदीप डे, डी.पी. शर्मा एवं गुरबचन सिंह
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

सिंचित क्षेत्रों में रोपाई विधि से धान की खेती देश के प्रायः सभी भागों में प्रचलित है। इस विधि में धान के खेत में लगातार पानी भरना पड़ता है जिसके कारण इन क्षेत्रों में जल के अत्यधिक दोहन के कारण भूजल स्तर में तेजी से गिरावट तथा सिंचाई जल की गुणवत्ता में ह्रास हो रहा है। दिन प्रतिदिन घटती कृषि भूमि और भूजल के अत्यधिक दोहन की समस्या आज विकराल रूप धारण कर चुकी है। इन क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का अवैज्ञानिक दोहन हो रहा है और लगातार सघन खेती के परिणामस्वरूप मृदा की उर्वराशक्ति भी कम हो रही है। फसलोत्पादन में लागत बढ़ती जा रही है तथा फसल की कटाई व बुआई के समय मजदूरों की उपलब्धता कम हो रही है जिसके कारण किसान को प्राप्त होने वाली शुद्ध आय में कमी हो रही है। विश्व खाद्य संगठन ने धान–गेहूँ फसल प्रणाली की परंपरागत विधि को प्राकृतिक संसाधनों के लिए घातक बताया है क्योंकि इससे भूमि तथा जल की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। अतएव कृषि में संसाधन संरक्षण तकनीकों को अपनाने की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि उत्पादन लागत को कम किया जा सके और भूमि एवं जल की गुणवत्ता में हो रहे क्षरण को कम किया जा सके। धान–गेहूँ की प्रचलित उत्पादन तकनीक में बदलाव लाना इसलिए भी आवश्यक है ताकि खेत की तैयारी में लागत कम की जा सके, सिंचाई के जल को यथासम्भव बचाया जा सके, फसलोत्पादन में श्रमिकों की आवश्यकता कम की जा सके और जमीन की उर्वराशक्ति में हो रही कमी को नियन्त्रित किया जा सके। गेहूँ के अवशेषों सहित शून्य जुताई एवं कम जुताई करके धान की सीधी बुआई विधि से फसल उत्पादन करने से मृदा गुणों में आशातीत सुधार होता है। विश्व में 1060 लाख हैक्टर, एशिया में 25 लाख हैक्टर, गंगा सिंधु के मैदानी भागों के 19 लाख हैक्टर और भारतवर्ष में लगभग 3000 हैक्टर में सीधी बुआई विधि से धान की खेती की जाती है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में पाँच वर्षों तक धान की सीधी बुआई पर अध्ययन करने पर पाया गया कि क्षारीय स्थितियों में भी धान की सीधी बुआई से संतोषजनक उपज प्राप्त की जा सकती है और पर्यावरण एवं मृदा का स्वास्थ्य सही रखा जा सकता है। इस आलेख में धान–गेहूँ प्रणाली में धान की सीधी बुआई तकनीक का विस्तृत विवरण दिया जा रहा है ताकि वैज्ञानिक विधियों का लाभ कृषकों तथा कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचाया जा सके।

## क्षारीय भूमि

भूमि की वह अवस्था जिसमें विनिमययोग्य सोडियम या सिंचाई जल जिसमें सोडियम बाइकार्बोनेट, सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम सिलीकेट लवणों की अधिकता होती है क्षारीय भूमि कहलाती है और इस वातावरण को क्षारीय वातावरण कहा जाता है। ऐसी भूमि का क्षारीयमान (पीएच) संतृप्तावस्था में 8.2 से अधिक होता है तथा विनिमययोग्य सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक होता है। उन सभी मृदाओं में जिनका पीएच मान 8.2 से 9.5 तक होता है धान की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है, किंतु इसके लिये वैज्ञानिक तरीके से भूमि प्रबंधन करने की आवश्यकता होती है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल ने पाँच वर्षों तक धान की सीधी बुआई पर अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि क्षारीय वातावरण में भी धान की सीधी बुआई से धान–गेहूँ फसलों की संतोषजनक उपज प्राप्त की जा सकती है और पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहता है।

## धान की रोपाई विधि

खेत में पानी भरकर 3 या 4 बार देशी हल या पाटा चलाकर रोपाई हेतु भूमि को तैयार किया जाता है।

विभिन्न उर्वरकों की संस्तुत मात्रा अंतिम बार पाटा लगाने के पहले समान रूप से बिखेर कर मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला दी जाती है। धान रोपाई विधि में 20 से 30 दिन आयु की तैयार पौध को अच्छी मुलायम मृदा में 15 सेंमी. पंक्ति से पंक्ति और 15 सेंमी. पौधे से पौधे की दूरी पर 2 या 3 पौधों को एक साथ 2 से 3 सेंमी. तक गहरी रोपाई करते हैं। इसके बाद यूरिया उर्वरक की संस्तुत मात्रा एवं सिंचाइयाँ दी जाती है।

## धान की सीधी बुआई

धान की सीधी बुआई से तात्पर्य है धान के सूखे बीजों की जीरो सीड ड्रिल मशीन द्वारा खेत में बुआई करने के बाद हल्की सिंचाई करके उगने के लिये छोड़ देते हैं। आवश्यकतानुसार उर्वरकों एवं सिंचाई द्वारा धान की संतोषजनक पैदावार ली जाती है। इस विधि में न तो धान की नर्सरी तैयार करने की आवश्यकता होती है और न ही खेत में पानी भरकर रोपाई करने की जरुरत पड़ती है।

## धान की सीधी बुआई में जीरो सीड ड्रिल मशीन का प्रयोग

इस सीड ड्रिल की मूल संरचना गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा विकसित न्यूजीलैंड माडल पर आधारित है। यह सीड ड्रिल नाली खोलने वाली उल्टी टी के आकार की होती है जिसमें एक आंकलक खुदाई करने वाली डिस्क व खाद डालने के लिए एक यंत्र परंपरागत बीज व खाद ड्रिल में उल्टी टी आकार के 9 से 11 फाल लगे होते हैं जिनके बीच की दूरी को विभिन्न फसलों की बुआई के लिए बीज बोने की दूरी के अनुसार समायोजित किया जा सकता है। यह ड्रिल बीज को डालने के लिए जमीन में एक पतली एवं 7.5 से 10.0 सेंमी. गहरी झिर्री बना देती है। अच्छे जमाव के लिए मशीन से जुताई के समय खेत में नमी की मात्रा सामान्य बुआई की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए। बीज व खाद की सही मात्रा डालने के लिए ड्रिल को समायोजित कर सकते हैं।

## धान की सीधी बुआई विधि में बुआई का समय एवं उर्वरकों का प्रयोग

धान की सीधी बुआई के लिये 1 से 15 जून का समय उपयुक्त होता है। अतएव इसी अवधि में बुआई की जानी चाहिये। सीधी बुआई के लिये धान की संकर प्रजाति (अराईज– 6129) को बुआई के लिये प्रयोग किया जा सकता है। हाइब्रिड अराईज–6129 के लिए बीज की मात्रा 20 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिये। इस प्रजाति के लिए नाइट्रोजन 150 कि॰ग्रा॰, फास्फोरस 60 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर प्रयोग किया जाना चाहिए। डी.ए.पी. 125 कि॰ग्रा॰ और जिंक सल्फेट 30 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग किया जाता है। बुआई के 25 से 30 दिन बाद 125 कि॰ग्रा॰ यूरिया, 45 से 50 दिन बाद 125 कि॰ग्रा॰ और 60 से 65 दिन बाद 75 कि॰ग्रा॰ यूरिया प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग किया जाता है।

## धान की सीधी बुआई की संस्तुत विधियाँ

धान की सीधी बुआई की निम्नलिखित 5 विधियाँ संस्तुत की जाती हैं जिनको अपनाकर परंपरागत रोपाई विधि की तुलना में कम व्यय पर अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

### 1. कम जुताई मे धान की सीधी बुआई

गेहूँ की फसल काटने के बाद खाली खेतों में हैरो एवं टिलर से जुताई करके मिट्टी को भुर–भुरा एवं समतल कर देते हैं। इसके बाद शुन्य जुताई (जीरो टिलेज) मशीन की मदद से धान के सूखे बीजों को बावीस्टिन से उपचारित करके जून के प्रथम सप्ताह में खेत में बुआई कर देते हैं। प्रायः श्रमिकों की कमी के कारण धान की रोपाई समय पर नहीं हो पाती जिससे धान की

*कम जुताई करके धान की सीधी बुआई द्वारा जुताई खर्च में 50 प्रतिशत बचत*

उत्पादकता प्रभावित होती है, सीधी बुआई करके उससे बचा जा सकता है। इस विधि से श्रमिकों की बचत के साथ–साथ समय पर धान की बुआई सम्भव हो पाती है और सिंचाई जल तथा बिजली के खर्च में लगभग 30 प्रतिशत बचत की जा सकती है।

### 2. कम जुताई में गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की बुआई

यह विधि भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने के साथ–साथ धान की उत्पादकता बढ़ाने में मद्दगार होती है। खेत में गेहूँ की फसल के अवशेषों को मिट्टी में मिलाने हेतु हैरो से जुताई करके खेत को कुछ दिनों के लिए छोड़ दिया जाता है जिससे गेहूँ के अवशेष नमी एवं मिट्टी के संपर्क में आकर सड़ना–गलना शुरू हो जाते हैं और अवशेष टूटकर छोटे–छोटे टुकडों में बंट जाते हैं जिससे बुआई में बाधा नहीं आती। फसल अवशेष सड़–गल कर मिट्टी की उर्वराशक्ति को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

*कम जुताई करके गेहूँ के अवशेषों में धान की सीधी बुआई से मृदा कार्बन में वृद्धि के साथ जुताई खर्च में 50 प्रतिशत बचत*

इसके बाद जीरो टिलेज मशीन की मदद से सूखे धान के बीजों को बावीस्टिन मिलाकर जून के प्रथम सप्ताह में बुआई कर दी जाती है। इस विधि से फसल अवशेषों को जलाने से होने वाली हानि से बचा जा सकता है और पैदावार भी अच्छी प्राप्त की जा सकती है।

### 3. बिना जुताई धान की बुआई

जीरो टिलेज पद्धति धान की खेती के लिए उत्तम है क्योंकि इसमें बहुत कम जुताई यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है तथा जुताई खर्च में काफी बचत होती है। बिना जुताई जीरो टिलेज द्वारा धान की बुआई करके खेत की तैयारी में सिंचाई जल की भी बचत होती है।

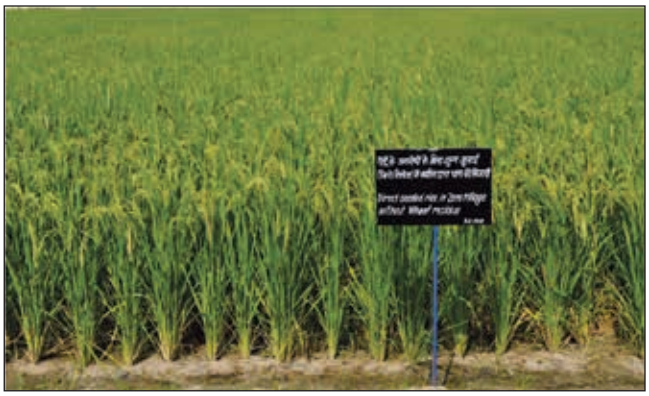

*जीरो टिलेज से धान की सीधी बुआई*

### 4. बिना जुताई गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की बुआई

जीरो टिलेज पद्धति में जुताई यन्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा जुताई खर्च में बचत होती है। गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई करके खेत की तैयारी में खर्च कम और श्रमिकों की समस्या से निजात मिल जाती है। गेहूँ के अवशेषों को जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है किंतु अवशेष सड़–गल कर मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाते हैं और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ धान की फसल से अधिक आमदनी प्राप्त होती है।

*जीरो टिलेज द्वारा गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई*

### 5. ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई

धान की सीधी बुआई में ढैंचे की हरी खाद प्रयोग करने के तीन मुख्य चरण होते हैं।

**(क) ढैंचा के साथ धान की बुआई:** धान के साथ ढैंचा की बुआई करने के लिए सबसे पहले धान की जीरो टिलेज मशीन से बुआई करते हैं उसके तुरन्त बाद ढैंचा

*ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई*

का बीज 10 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर छिड़काव करके हल्की सिंचाई कर देते हैं। इसके बाद खेत की मिट्टी सूखने पर हल्की सिंचाइयाँ करते रहते हैं। इस विधि में नाइट्रोजन और फास्फोरस की मात्रा क्रमशः 150 तथा 60 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर प्रयोग करते हैं। एक तिहाई नाइट्रोजन और सम्पूर्ण फास्फोरस की मात्रा बुआई के समय फसल में डालते हैं। बची हुई नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में बांटकर छिड़काव करते हैं।

**(ख) धान की उपस्थिति में ढैंचा की फसल पर 2–4 डी का छिड़काव:** धान व ढैंचा की खड़ी फसल में बुआई के 20–25 दिनों के बाद 2–4 डी खरपतवारनाशी 2.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव कर दिया जाता है जिससे ढैंचा की पत्तियाँ मुरझाकर पीली पड़ जाती है और कुछ दिन बाद खेत में गिर जाती है। पत्तियों के सड़ने–गलने की प्रक्रिया और धान की बढ़वार साथ–साथ चलती रहती है जिससे धान की फसल को ढैंचा की हरी खाद प्राप्त हो जाती है। इस अवस्था को ब्राउन मैन्योरिंग कहते हैं। इस समय प्रायः खेत में दूसरे खरपतवारों को नियन्त्रित करना बहुत कठिन होता है क्योंकि खेत में मोथा, बरटा, मकरा और अन्य खरपतवारों की अधिकता होती है। खरपतवारनाशी रसायनों का छिड़काव ढैंचा की खड़ी फसल की उपस्थिति में ठीक से नहीं हो पाता है और खरपतवारों की बढ़वार चलती रहती है। फसल को खरपतवारों से बचाने हेतु श्रमिकों की सहायता से निराई करके निकालना पड़ता है। यदि खरपतवार नियन्त्रण 30 दिनों के अन्दर नहीं होता है तो खरपतवारों की बढ़ोत्तरी एक समस्या बन जाती है और उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

**(ग) ढैंचा की पत्तियों एवं पौधों की पलवार द्वारा वाष्पीकरण नियंत्रण :** ब्राउन मैन्योरिंग क्रिया के अंतर्गत ढैंचे की फसल पर खरपतवारनाशकों का छिड़काव होने के बाद पत्तियाँ जमीन पर गिर जाती है तथा कुछ समय बाद ढैंचे की टहनियाँ भी सूखकर मिटटी में पलवार का काम करती है। इस विधि से दूसरी विधियों की अपेक्षा सिंचाई जल की बचत ज्यादा होती है और धान की फसल में पानी की आवश्यकता कम पड़ती है। ढैंचा के पलवार के उपरान्त खेत से वाष्पीकरण कम होने के कारण मिट्टी देर से सूखती है और लगभग एक सिंचाई जल की बचत हो जाती है। इस विधि से धान के उत्पादन में 30 से 40 प्रतिशत सिंचाई जल, 21 प्रतिशत डीजल, 24 प्रतिशत मानव श्रम और 30 प्रतिशत बिजली खर्च में बचत होती है। इस प्रकार ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ धान की संतोषजनक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

*धान की फसल में 2–4 डी का छिड़काव और ढैंचा की हरी खाद का प्रयोग*

*धान की सीधी बुआई में ढैंचा की हरी खाद से संतोषजनक पैदावार*

## धान की सीधी बुआई में खरपतवार नियंत्रण

धान के खेतों में खरपतवार नियंत्रण के लिए स्टाम्प नामक खरपतवारनाशी दवा का 1 लीटर प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 2 दिन बाद खेत में सिंचाई करके प्रयोग किया जाता है ताकि खरपतवारों को जमने से रोका जा सके। मोथा खरपतवार उगने पर सनराइज 125 ग्राम प्रति हैक्टर 625 लीटर पानी में घोलकर बुआई के 25–30 दिन बाद खेत में छिड़काव किया जाता है। मकरा और सामक आदि खरपतवार उगने पर व्हिपसुपर रसायन का 625 मि.ली. प्रति हैक्टर 500 से 625 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के 25–30 दिन बाद खेत में छिड़काव किया जाता है।

## रोग एवं कीट नियन्त्रण

अभासी कंडुवा या हल्दी गांठ रोग (फाल्स स्मट) के उपचार हेतु कॉपरऑक्सीक्लोराईड (50 डब्लु. पी.) 1.25 कि॰ग्रा॰ दवा 300 लीटर पानी में घोलकर फूल आने के समय प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव किया जाता है और बुआई से पूर्व धान के बीजों को बावीस्टीन रसायन की 2 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ बीज से उपचारित किया जाता है। धान की सीधी बुआई में कीटों का प्रकोप बहुत कम होता है। यदि कीटों का प्रकोप दिखाई दे तो उचित कीटनाशी रसायनों का प्रयोग किया जा सकता है।

## सिंचाई प्रबंधन

जल प्लावित (कटवां सिंचाई) विधि से 6 से 7.5 सेंमी. जल प्रति सिंचाई की दर से दिया जाता है। बुआई के अगले दिन प्रथम सिंचाई की जाती है। बुआई के 6 या 7 दिन बाद दूसरी सिंचाई की जाती है। मिट्टी की ऊपरी सतह हल्की सूखी दिखाई देने पर पुनः सिंचाई की आवश्यकता होती है। फूल आने के समय सिंचाई कुछ गहरी और उसके बाद हल्की सिंचाइयाँ करने की आवश्यकता होती है ताकि बालियों में दाने भरने के समय पौधों को पानी की कमी न रहे।

## धान की उपज

बिना जुताई तथा कम जुताई विधि में धान की पैदावार 6.5 टन प्रति हैक्टर तक प्राप्त होती है जबकि गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई से 6.8 टन प्रति हैक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है। गेहूँ के अवशेषों में धान की सीधी बुआई बिना जुताई विधि की तुलना में अच्छी है क्योंकि इस विधि में गेहूँ के अवशेषों का प्रयोग नहीं करते हैं जिसके कारण धान की बुआई में जीरो टिलेज मशीन से बुआई करना और रासायनिक विधि से खरपतवार नियन्त्रण करना आसान होता है और पौधों की बढ़वार एवं पैदावार अच्छी होती है। इस प्रकार गेहूँ के अवशेषों के साथ बिना जुताई किये धान की सीधी बुआई से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ 6.2 टन प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है। इस विधि में धान की बुआई से पहले खेत में गेहूँ की फसल के अवशेषों को भूमि सतह से लगभग 15 सेंमी. ऊपर कटाई करके यथावत छोड़ देते हैं। इसके बाद बिना जुताई किये सीधे धान के सूखे बीजों को बावीस्टीन से उपचारित करके जून के प्रथम सप्ताह में खेत में जीरो टिलेज मशीन द्वारा बुआई कर देते हैं। ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई से प्राकृतिक संसाधनों की बचत के साथ–साथ धान की पैदावार 6.8 टन प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है जो रोपाई विधि से प्राप्त पैदावार की तुलना में अपेक्षाकृत कम है। इस विधि में रासायनिक विधि से खरपतवार नियन्त्रण करना कठिन होता है।

## सिंचाई जल की उत्पादकता

जल उत्पादकता का धान की खेती में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि पहली हरितक्रान्ति के बाद जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप वर्षा में अनिश्चितता एवं उसका असामान्य वितरण होता रहा है जिसके कारण भूजल पर निर्भरता से जलस्तर लगातार गिर रहा है। इसके दूरगामी परिणाम धान की पैदावार एवं क्षेत्र पर अच्छे नजर नहीं आते हैं और खाद्य समस्या का समाधान कठिन हो सकता है। इस प्रकार जल उत्पादकता को ध्यान में रखते हुए धान उत्पादन की ऐसी विधियों को विकसित करना आवश्यक है जिससे जल उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

**(क) कम जुताई पर गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की बुआई विधि में उपजः** इस विधि में फसल अवशेषों को जलाने से होने वाली हानि से बचा जा सकता है और क्षेत्रीय अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि धान की पैदावार 6.8 टन प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है इस विधि में

0.49 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर जल उत्पादकता प्राप्त हुई जोकि धान की रोपाई विधि के समतुल्य थी ।

**(ख) ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई विधिः** इस विधि में ढैंचा के साथ धान की जल उत्पादकता 0.50 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर तथा रोपाई विधि की जल उत्पादकता 0.48 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर से ज्यादा थी क्योंकि ढैंचा ब्राउन मैन्योरिंग विधि के अंतर्गत ढैंचे की फसल पर खरपतवारनाशक का छिड़काव होने के बाद पत्तियाँ जमीन पर गिर जाती है तथा कुछ समय बाद ढैंचे की टहनियां भी सूखकर मिट्टी में पलवार का काम करती हैं। इस विधि में दूसरी विधियों की अपेक्षा सिंचाई जल की बचत ज्यादा होती है और धान की फसल में पानी की जरूरत कम पड़ती है। ढैंचा के पलवार के कारण खेत से वाष्पीकरण कम होने के कारण मिट्टी देर से सूखती है और लगभग एक सिंचाई जल की बचत हो जाती है।

**(ग) शुन्य जुताई में धान की सीधी बुआईः** इस विधि में जल उत्पादकता 0.46 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर, 6.4 टन प्रति हैक्टर पैदावार के साथ प्राप्त होती है। गेहूँ के अवशेषों में शून्य जुताई में धान की सीधी बुआई पर सबसे कम जल उत्पादकता 0.45 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर और पैदावार 6.2 टन प्रति हैक्टर प्राप्त हुई। जल उत्पादकता गेहूँ के अवशेषों सहित शुन्य जुताई में धान की सीधी बुआई पर बगैर गेहूँ अवशेषों की तुलना में अधिक प्राप्त नहीं हुई क्योंकि इस विधि में गेहूँ के अवशेषों के कारण रासायनिक विधि से खरपतवार नियन्त्रण कठिन होता है जिसके परिणामस्वरूप पौधों की बढ़वार एवं पैदावार प्रभावित होती है।

## सिंचाई जल की बचत

धान की परंपरागत खेती में प्लावित जल विधि से सिंचाई की जाती है जिसमें खेत में पानी भराव हमेशा बनाए रखते हैं। इसमें अधिकतर पानी रिसकर धान की जड़ों से नीचे चला जाता है जिसका धान के पौधों को कोई लाभ नहीं हो पाता है। इसके अलावा सतही वाष्पन से सिंचाई जल की हानि अधिक होती है। अधिकतर भूजल, जिसको ट्यूब वेल द्वारा बाहर निकाला जाता है एक अमूल्य संसाधन है जिसकी भरपाई मुश्किल से संभव होती है। इस जल को निकालने के लिए बहुमूल्य संसाधनों की जरूरत पड़ती है और उनकी भी कमी हो रही है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल पर धान में जल सिंचाई की मात्रा एवं लागत कम करने हेतु लम्बे समय से अनुसंधान किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप धान की सीधी बुआई करके 30 प्रतिशत से भी ज्यादा सिंचाई जल की बचत की जा सकती है तथा इस बचे पानी से ज्यादा क्षेत्रफल में धान की खेती करके धान का कुल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का सही ढंग से प्रयोग करके प्रति इकाई धान की लागत को कम कर सकते हैं।

## मृदा गुणवत्ता पर प्रभाव

धान–गेहूँ फसल चक्र पर प्राकृतिक संसाधन संरक्षण परीक्षणों से विदित हुआ है कि इस प्रकार की संरक्षण खेती द्वारा मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में सुधार होता है। परंपरागत तरीके से धान की खेती करने से मृदा की भौतिक दशा खराब होती है मृदा संरचना जो कि मृदा कणों के आपस में मिलने से बनती है वह अपेक्षाकृत सीधी बुआई वाली तकनीक में बहुत ही अच्छे तरीके से बनती है और परंपरागत तकनीक में इसका अभाव पाया गया है। सीधी बुआई तकनीक से मृदा संरचना, जल धारण क्षमता तथा जल निक्षालन दर में सार्थक सुधार होता है। मृदा में कार्बन पृथक्करण कम होने से तथा कार्बन पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा उर्वरता बढ़ जाती है तथा लाभकारी सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में भी बढ़ोत्तरी होती है।

## पोषक तत्वों की उपलब्धता

धान फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए जैविक व रासायनिक खादों का प्रयोग महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परंपरागत तरीकों से धान की बुआई (ड्रिल) करने से जीरो टिलेज खेतों में गेहूँ के फाने रूकावट डालते हैं, जिसके कारण किसानों को धान की बुआई छिटककर करनी पड़ती है तथा फास्फोरस वाली खाद को पहले छिड़काव कर डालने के बाद मिट्टी में मिलाया जाता है जिससे अधिकतर मात्रा सतह पर जम जाती है और बहुत कम मात्रा ही पौधे को मिल पाती है। इस प्रकार खाद का समुचित प्रयोग करने हेतु धान की सीधी बीजाई मशीन द्वारा की जानी चाहिए जिससे पोषक तत्वों

की उपलब्धता को काफी हद तक सुनिश्चित किया जा सकता है।

## प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

**प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोगः** रोपाई विधि की तुलना में कम जुताई विधि में धान की सीधी बुआई से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है साथ ही साथ समय पर धान की बुआई संभव हो पाती है। 24 प्रतिशत तक श्रमिकों की बचत होती है और औसतन 29 प्रतिशत तक सिंचाई जल की भी बचत होती है। परन्तु गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई कम जुताई विधि में भी 24 प्रतिशत मानव श्रम तथा 42 प्रतिशत डीजल की भी बचत होती है। कम जुताई पर गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई विधि में फसल अवशेषों को जलाने से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

**बिना जुताईः** धान की खेती के लिए जीरो टिलेज सीधी बुआई विधि से रोपाई विधि की तुलना में प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर संरक्षण होता है क्योंकि इसमें बहुत कम जुताई यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है और जुताई करने की जरूरत नहीं होती है तथा जुताई खर्च में 86 प्रतिशत डीजल की बचत होती है। बिना जुताई जीरो टिलेज द्वारा धान की बुआई करके खेत की तैयारी में बचत के साथ–साथ 29 प्रतिशत तक सिंचाई जल की भी बचत होती है। यह विधि गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई की तुलना में अच्छी है क्योंकि इस विधि में गेहूँ के अवशेषों का प्रयोग नहीं करते हैं जिसके कारण रासायनिक विधि से खरपतवार नियन्त्रण करना तुलनात्मक अच्छा होता है।

**गेहूँ के अवशेषों के साथः** जीरो टिलेज में धान की सीधी बुआई करके 86 प्रतिशत डीजल, 29 प्रतिशत मानव श्रम की बचत और सिंचाई में 29 प्रतिशत तक बचत होती है। इस प्रकार जीरो टिलेज द्वारा गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई से प्राकृतिक संसाधनों की बचत तो होती है परन्तु धान की पैदावार रोपाई विधि से प्राप्त पैदावार की तुलना में कम प्राप्त होती है। इस विधि में गेहूँ के अवशेषों को जलाने की आवश्यकता नहीं होती है और अवशेष सड़–गल कर मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाते हैं। इस विधि में बुआई के 30 दिनों के अन्दर खरपतवारों को नियन्त्रित करना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि खेत में मोथा, बरटा, मकरा और अन्य खरपतवारों की अधिकता होती है और खरपतवारनाशकों का छिड़काव गेंहूँ के अवशेषों की उपस्थिति में कठिन होता है क्योंकि खरपतवारनाशी रसायनों का छिड़काव अवशेषों की उपस्थिति में ठीक से सभी जगहों पर नहीं हो पाता और खरपतवारों की बढ़वार यथावत चलती रहती है। इसी कारण धान की पैदावार संतोषजनक प्राप्त नहीं हो पाती है।

**ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआईः** इस विधि में 34 प्रतिशत सिंचाई जल, 21 प्रतिशत डीजल, 24 प्रतिशत मानव श्रम की बचत होती है। इस प्रकार ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ धान की पैदावार 6.8 टन प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है जो रोपाई विधि से प्राप्त पैदावार की तुलना में सांख्यिकीय दृष्टि से बराबर है। इस विधि में दूसरी विधियों की अपेक्षा सिंचाई जल की बचत ज्यादा होती है और धान की फसल में पानी की जरुरत कम पड़ती है।

## धान उत्पादन : लागत एवं आय

उत्पादन लागत, शुद्ध आय, आय–व्यय अनुपात के अनुसार पारंपरिक धान रोपाई विधि में पैदावार 7.1 टन प्रति हैक्टर और 0.48 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर जल उत्पादकता के साथ उत्पादन लागत रुपये 33,977, शुद्ध आय रुपये 37,023 और 2.09 आय–व्यय अनुपात प्राप्त हुआ। कम जुताई पर गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई विधि में धान की पैदावार 6.8 टन प्रति हैक्टर और 0.49 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर जल उत्पादकता के साथ शुद्ध आय रुपये 39,058 और 2.35 आय–व्यय अनुपात प्राप्त हुआ जोकि पारंपरिक धान रोपाई विधि और दूसरी धान की सीधी बुआई विधियों की तुलना में सबसे अधिक रहा। इसके बाद ढैंचा के साथ धान की सीधी बुआई विधि में 34 प्रतिशत सिंचाई जल, 21 प्रतिशत डीजल, 24 प्रतिशत मानव श्रम बचत करके 6.8 टन प्रति हैक्टर पैदावार और 2.24 आय–व्यय अनुपात के साथ शुद्ध आय रुपये 37,621 तक प्राप्त हुई जोकि पारंपरिक धान रोपाई विधि से अधिक थी। शुन्य जुताई में गेहूँ के अवशेषों के साथ धान की सीधी बुआई पर 2.22 आय–व्यय अनुपात के

साथ सबसे कम उत्पादन लागत रुपये 27,657 में शुद्ध आय रुपये 34,043 तक प्राप्त हुई। इसका मुख्य कारण ज्यादा खरपतवारों की वजह से प्रति इकाई धान पौधों की संख्या कम थी और इस प्रकार पैदावार भी 6.2 टन प्रति हैक्टर प्राप्त हुई ।

## निष्कर्ष

धान की सीधी बुआई में सिंचाई जल की 29 प्रतिशत बचत के साथ–साथ कम जुताई में अवशेषों को मिट्टी में मिलाकर धान की पैदावार 6.8 टन प्रति हैक्टर मिलती है जबकि 0.49 कि॰ग्रा॰ प्रति घनमीटर जल उत्पादकता, 24 प्रतिशत मानव श्रम तथा 42 प्रतिशत डीजल की बचत होती है। इस विधि में फसल अवशेषों को जलाने से होने वाली हानि से बचा जा सकता है। इस प्रकार सीधी बुआई में रोपाई विधि की तुलना में प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण अधिक होता है। धान की सीधी बुआई में 39,058 रुपये प्रति हैक्टर शुद्ध लाभ और 2.35 आय–व्यय अनुपात प्राप्त किया जा सकता है।

**– समाप्त –**

यह जरूरी नहीं कि हर काम खुशी प्रदान करे,
परन्तु बिना काम के खुशी नहीं मिलती।

# लवणीय जल सिंचित भूमि में सरसों की सफल खेती

भूदयाल पाठक, रमेश सिंह चौहान एवं पवन कुमार सिसोदिया

लवणीय मृदा एवं जल प्रबन्ध परियोजना

राजा बलवंत सिंह कृषि महाविद्यालय बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश)

देश ने पिछले चार दशकों में कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। इसका पूरा श्रेय फसलों की अधिक उपज देने वाली प्रजातियों, बढ़े हुए सिंचित क्षेत्र, उर्वरकों का अधिक उपयोग, कृषि वैज्ञानिकों एवं किसानों की कड़ी मेहनत को जाता है। उत्तर प्रदेश के आगरा संभाग में लगभग 44 प्रतिशत क्षेत्र में ही अच्छी गुणवत्ता का जल उपलब्ध है। इसके अलावा क्षेत्र में 21 प्रतिशत लवणीय जल तथा 36 प्रतिशत क्षारीय तथा कम क्षारीय जल है। इन समस्याग्रस्त भूजल सिंचित क्षेत्रों में फसलों तथा उर्वरकों का विशेष प्रबन्ध करना अति आवश्यक है।

निरन्तर बढती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य तेलों की आपूर्ति एक बड़ी समस्या है। देश में भूजल के अत्यधिक दोहन के कारण इसकी गुणवत्ता निरंतर निम्न स्तर की होती जा रही है। अतः ऐसे लवणीय जल (खारे पानी) वाले आगरा संभाग के क्षेत्रों में सरसों की उचित पैदावार लेने के लिए नाइट्रोजन उर्वरक की संस्तुत मात्रा ज्ञात करने हेतु क्षेत्रीय प्रायोगिक मूल्यांकन किया गया। इस अध्ययन के नतीजों से किसानों को स्पष्ट जानकारी मिलती है कि अगर संस्तुत मात्रा से 50 प्रतिशत कम उर्वरक डालेंगे तो उपज का स्तर क्या होगा तथा संस्तुत मात्रा से 90 प्रतिशत, 100 प्रतिशत अथवा 125 प्रतिशत अधिक डालेंगे तो उपज में कितनी वृद्धि हो सकती है।

राजा बलवन्त सिंह कृषि महाविद्यालय से संचालित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की खारे पानी के कृषि उपयोग संबंधी परियोजना में किसानों के खेतों पर वर्ष 2004 एवं 2005 में क्रियान्वित अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत नगला हृदय (मथुरा) में एक क्षेत्रीय प्रयोग दो वर्षों तक किया गया जिसमें सरसों की आर.एच. 30 प्रजाति बोई गई। फसल के नाइट्रोजन की मात्राएं 60, 90, 120 तथा 150 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर के हिसाब से डाली गई। सरसों की बीजदर 7.5 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर रखी गई। फॉस्फोरस एवं पोटाश क्रमशः 60 तथा 30 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग में डाला गया। सरसों की बुआई 17 गुणा 13 मीटर की पंक्तियों में की गई तथा उपचारों की तीन बार पुनरावृत्ति की गई। सरसों की फसल की बुआई वर्षा द्वारा संचित नमी में की गई, इसके बाद 2 सिंचाई, पहली फूल आते समय तथा दूसरी दाने बनते समय की गई। सरसों की फसल में सिंचाई के लिए उपयोग वाले नलकूप जल की वैद्युत चालकता 8.9 डेसी सीमन प्रति मीटर तथा सोडियम अधिशोषण अनुपात 17.2 था।

## सरसों की फसल में विभिन्न वृद्धि कारकों का प्रभाव

सरसों की फसल बोने के बाद विभिन्न उपचारों के कारण वृद्धि कारकों पर प्रभाव का अध्ययन किया गया जिनमें दो माह बाद अंकुरण, पौधों की ऊँचाई, प्राथमिक तथा द्वितीयक शाखाएं तथा फसल कटने के समय का अध्ययन किया गया। अंकुरण 10–11 पौधे प्रति मीटर दर्ज किया गया, पौधों की ऊँचाई दो माह बाद 60 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन वाले उपचार में 42.8 सेंमी. तथा 150 कि॰ग्रा॰ वाले उपचार में 48.8 सेंमी. दर्ज की गई।

इससे यह स्पष्ट होता है कि नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा बढाने के साथ–साथ पौधों की ऊँचाई भी बढती है लेकिन ऊँचाई का यह अन्तर फसल के पकने के समय बहुत सीमित हो जाता है। 60 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन वाले उपचार में 169 सेंमी. एवं 150 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन वाले उपचार में 173 सेंमी. मापी गई। इसी प्रकार प्राथमिक शाखाओं में भी दो माह बाद नाइट्रोजन मात्रा का बहुत ज्यादा अन्तर नहीं रहता, यह केवल 7 से 8.6 प्रति पौधा दर्ज की गई, जबकि सरसों की फसल के पकने के समय 14 से 22.6 तक प्रति पौधा आंकी गई, इससे यह स्पष्ट होता है कि जैसे–जैसे नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा बढती है पौधों में द्वितीयक शाखाएं बढती जाती है। जो बाद में फसल की उपज में वृद्धि पर प्रभाव डालती है। नाइट्रोजन की मात्रा 60 से 90 कि॰ग्रा॰ करने पर 19.3, 90 से 120 कि॰ग्रा॰ करने पर 10.8 तथा 120 से 150 कि॰ग्रा॰ करने पर 3.0 प्रतिशत की वृद्धि होती है (तालिका 1)।

### तालिका 1 : नाइट्रोजन की विभिन्न मात्राओं का उपज पर प्रभाव

| नाइट्रोजन (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) | उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) | | औसत उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) | उपज में बढ़ोतरी (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|---|
| | 2004–05 | 2005–06 | | |
| 60 | 15.02 | 18.33 | 16.62 | – |
| 90 | 16.01 | 23.64 | 19.34 | 19.3 |
| 120 | 18.04 | 25.32 | 21.61 | 30.1 |
| 150 | 18.60 | 25.61 | 22.13 | 33.1 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 1.45 | 1.60 | 1.52 | – |

सरसों की फसल की दो वर्षों की औसत उपज के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा की प्रत्येक वृद्धि से उपज बढती जाती है। 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की मात्रा के साथ प्राप्त उपज की तुलना में 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ हुई वृद्धि तथा 90 कि.ग्रा. की तुलना में 120 कि.ग्रा. से प्राप्त वृद्धि अधिक पाई गई। परन्तु 120 कि.ग्रा. की तुलना में 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ प्राप्त उपज में वृद्धि सार्थक रूप से अधिक नहीं थी। सबसे कम सरसों की उपज 16.6 कुण्टल 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के द्वारा तथा 22.1 कुण्टल 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के द्वारा प्राप्त हुई। 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ उपज में प्रतिशत वृद्धि पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट हो जाता हैकि 19.3 प्रतिशत बढोतरी 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ, 30.1 प्रतिशत 120 कि.ग्रा. के साथ तथा 33.1 प्रतिशत तथा 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ होती है। सर्वाधिक वृद्धि 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन के साथ तथा उसके बाद 120 कि.ग्रा. के साथ होती है। इससे यह स्पष्ट है कि सरसों की फसल के लिए नाइट्रोजन की 120 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर मात्रा समुचित मात्रा है, लेकिन अधिक उपज की प्रतिस्पर्धा रखने वाले किसान 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन डालकर सर्वाधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं।

## सिफारिश

इस प्रयोग से यह सिफारिश की जा सकती है कि सरसों की फसल में सिंचाई वाले जल की वैद्युत चालकता 8.9 डेसी सीमन प्रति मीटर तथा सोडियम अधिशोषण अनुपात 17.2 तक होने की दशा में सर्वाधिक सरसों की उपज 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर देने पर प्राप्त होती है। सर्वाधिक प्रतिशत वृद्धि सरसों की फसल में 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन पर हुई। अतः लवणीय जल द्वारा सिंचित भूमि में 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर प्रयोग करने पर सरसों की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

**– समाप्त –**

बुद्धिमान वह है, जो किसी को गलतियों से हानि होते देखकर
अपनी गलतियाँ सुधार लेता है।

# अर्धशुष्क क्षेत्रों में बीजीय मसाला फसलों की उत्पादन तकनीक एवं आर्थिक महत्व

रविन्द्र सिंह[1], शारदा चौधरी[1], एच.एस. जाट[2], आर.के. यादव[2], आर.एल. मीणा[2] एवं बलराज सिंह[1]

[1]राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, अजमेर (राजस्थान)

[2]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

भारत मसाला उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है तथा इसे 'मसालों की भूमि' के नाम से जाना जाता है। इन मसालों के औषधीय गुणों व खुशबू के कारण विश्वभर के व्यापारी भारत की तरफ आकर्षित होते हैं। भारत के उत्तरी राज्य कश्मीर से लेकर सुदूर दक्षिण कन्याकुमारी तक विभिन्न प्रकार के मसालों का उत्पादन होता है। सभी मसालों का अपना अलग औषधीय गुण, रंग, खुशबू व स्वाद होता है। कुछ मसाले पादप का फल होते हैं, कुछ फूल तथा कुछ बीज। जो बीज मसालों के रूप में उपयोग में आते हैं उन्हें बीजीय मसालों के नाम से जाना जाता है। इनके अंतर्गत वे सभी शाकीय पौधे आते हैं जिनके बीज या फल का उपयोग विभिन्न रूपों में मसाले के लिए किया जाता है। मुख्य बीजीय मसाले जीरा, धनिया, मेथी, सौंफ, अजवायन, सोवा, कलौंजी, एनाइस, सेलेरी तथा स्याहजीरा है। भारत में राजस्थान तथा गुजरात दो राज्य मुख्य रूप से बीजीय मसालों की फसलों के उत्पादन में अग्रणी हैं। देश में होने वाले कुल मसालों के उत्पादन में बीजीय मसालों का क्षेत्रफल की दृष्टि से 36 प्रतिशत तथा उत्पादन की दृष्टि से 17 प्रतिशत योगदान है।

हमारे देश में बीजीय मसालों की खेती लगभग 12.5 लाख हैक्टर क्षेत्रफल पर की जाती है जिससे प्रतिवर्ष लगभग 9.4 लाख टन का उत्पादन होता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से जीरा प्रथम स्थान पर आता है परन्तु उत्पादन में धनिये का स्थान प्रथम है इसके बाद सौंफ व मेथी का स्थान है (तालिका 1)।

बीजीय मसाले अर्धशुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों की फसलें हैं तथा सीमान्त किसानों की आमदनी का मुख्य स्त्रोत है। शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में जल की कमी होती है तथा उपलब्ध भूजल सामान्यतया लवणीय होता है। बीजीय मसाला फसलों को कम जल की आवश्यकता होती है

**तालिका 1 : बीजीय मसाला फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन व उत्पादकता (वर्ष 2010–2011)**

| बीजीय मसाला फसल | क्षेत्रफल (लाख हैक्टर) | उत्पादन (लाख टन) | उत्पादकता (कि.ग्रा./हैक्टर) |
|---|---|---|---|
| धनिया | 5.07 | 4.82 | 909 |
| जीरा | 5.30 | 3.14 | 619 |
| सौंफ | 0.61 | 1.05 | 1721 |
| मेथी | 0.81 | 1.18 | 1456 |
| अन्य बीजीय मसाला फसलें | 0.55 | 0.58 | 1054 |
| कुल | 12.34 | 10.77 | 5759 |

अतः इनको उगाकर उचित पैदावार व दूसरी फसलों की तुलना में अधिक लाभ कमाया जा सकता है। भारत का बीजीय मसालों के निर्यात में अग्रणी स्थान है तथा यहाँ से बीजीय मसालों का निर्यात अमेरिका, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा यूरोपीय देशों में होता है।

**तालिका 2 : भारत से निर्यात होने वाले प्रमुख बीजीय मसालों का विवरण (वर्ष 2011–2012)**

| बीजीय मसाला फसलें | निर्यात की गई मात्रा (टन) | मूल्य (लाख रुपये) |
|---|---|---|
| धनिया | 28100 | 16402 |
| जीरा | 45500 | 64402 |
| सौंफ | 8100 | 2340 |
| मेथी | 21800 | 7209 |
| अन्य बीजीय मसाला फसलें | 13050 | 5881 |
| कुल | 116550 | 96274 |

*विभिन्न बीजीय मसाला फसलें*

निर्यात होने वाली फसलों में मात्रा व कीमत के आधार पर जीरे का प्रथम तथा धनिये का द्वितीय स्थान है। बीजीय मसालों के औषधीय गुणों व खुशबू के कारण इनकी मांग देश–विदेश में बढ़ती जा रही है। अतः यह अति आवश्यक हैकि उपलब्ध क्षमताओं व सुविधाओं का सुचारू व विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए (तालिका 2)।

## बीजीय मसालों का आर्थिक महत्व

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा वर्तमान में देश की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। पूर्व में भारत कृषि के कारण आर्थिक रूप से सुदृढ़ था परन्तु वर्तमान में शहरीकरण, व्यवसायिकरण व प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुध दोहन आदि के कारण कृषि पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। पर्यावरण संतुलन बिगड़ने के कारण ग्रीष्म ऋतु लम्बी अवधि की व शीत ऋतु कम अवधि की हो गई है जिससे परंपरागत तरीके अपनाकर खेती करना मुश्किल हो गया है। वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कम से कम समय व भूमि में अधिक से अधिक उपज लेना आवश्यक हो गया है। यह तभी संभव है जब किसान सीमित भूमि, संसाधनों, जलवायु आदि को ध्यान में रखते हुए फसल का चुनाव करें। फसल भी इस प्रकार की हो जो कम लागत में ज्यादा मुनाफा दे। उपरोक्त समस्याओं को गौर से देखा जाए तो अर्धशुष्क क्षेत्रों में बीजीय मसाले इस समस्या का काफी हद तक समाधान कर सकते हैं। विश्व में लगभग प्रतिवर्ष 160000 टन बीजीय मसालों की मांग है इसमें से लगभग 45 प्रतिशत आपूर्ति भारत करता है। भारत विश्व में सबसे ज्यादा बीजीय मसाले उगाने, खाने व निर्यात करने वाला देश है। आर्थिक दृष्टि से बीजीय मसालो में जीरा व धनिया प्रमुख स्थान रखते हैं। इन क्षेत्रों में उगाए गए बीजीय मसाला फसलों व गेहूँ के तुलनात्मक अध्ययन में जीरे की फसल में सकल आय व व्यय का अनुपात सर्वाधिक 4.95 पाया गया। इसके बाद गेहूँ व धनिया का स्थान है। दैनिक लाभ का आंकलन किया जाए तो जीरे से 558 रुपये प्रतिदिन आय प्राप्त होती है। दूसरे व तीसरे स्थान पर क्रमशः गेहूँ व धनिया का नाम आता है। अगर लाभ का आंकलन प्रति रुपये पर किया जाए तो तुलनात्मक रूप से जीरे पर 5.97 रुपये का लाभ प्राप्त होता है, इसके बाद धनिया व अजवायन का लाभ आता है। लाभ का आंकलन, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, उचित फसल प्रबंधन कर बीजीय मसाला फसलों से अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

उचित फसल प्रबंधन के लिए निम्न तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- परिस्थिति अनुरूप उचित व उन्नत प्रजाति का चयन
- बुआई पूर्व बीजोपचार
- पोषक तत्वों का उचित समय व मात्रा में प्रबंधन
- वैज्ञानिक विधि से सिंचाई
- खरपतवार नियंत्रण
- रोग व कीटों के आक्रमण से पूर्व ही नियंत्रण व उपचार
- आवश्यक हो तो जैविक उत्पादन
- कटाई पश्चात् सफाई, ग्रेडिंग व पैकिंग का उचित ध्यान

## औषधीय महत्व

प्राचीन काल से ही इन मसालों का उपयोग विभिन्न व्याधियों के निवारण के लिये किया जाता है। इनके औषधीय गुणों, महक व जायके के कारण भोजन में इनका विशेष महत्व होता है। जायके व महक के अतिरिक्त इनमें विद्यमान औषधीय गुण इनकी विशेषता को बढ़ाते हैं। विभिन्न बीजीय फसलों के औषधीय गुण निम्नलिखित अनुसार है:

## जीरा

जीरा मुख्य रूप से वायुनाशक, अग्निदीपक, मूत्रवर्धक तथा पाचक का कार्य करता है। प्रायः सब्जियों व कढ़ी में

छौंक में इसका उपयोग इन्हें वायुनाशक व पाचक बनाने में किया जाता है। इसका उपयोग पीसकर, सेककर, या कच्चे रूप में आवश्यकतानुसार किया जाता है।

## मेथी

इस बीजीय मसाले का उपयोग भूख बढ़ाने, पाचन सुधारने व जोड़ों, घुटनों, पीठ व हडिड्यों के दर्द को ठीक करने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग गर्भ निरोधक, मूत्रवर्धक, शक्तिवर्धक, वायुनाशक, कामोत्तेजक व पोषक दवाओं में किया जाता है। मधुमेह के रोगियों के लिए मेथी रामबाण का काम करती है।

## धनिया

धनिया के सूखे बीजों का उपयोग आयुर्वेदिक औषधियों में अपच, जुकाम, पेचिस, गर्मी, रजस्वला, दस्त तथा मूत्र संबंधित रोगों के उपचार हेतु किया जाता है। यह मुख्यतः वायुनाशक, मूत्रवर्धक व उत्तेजक होता है।

## सौंफ

सौंफ वायुनाशक व पाचन गुणों वाला बीजीय मसाला है। इसका उपयोग कच्चा, चाशनी लगाकर, रंग लगाकर व पान में डालकर किया जाता है। यह सीने, फेफडे, पित्ताशय व वृक्क (किडनी) रोगों के निवारण में उपयोग किया जाता है। इसमें कृमिनाशक, पाचक, वायुनाशक व अग्निदीपक आदि गुण पाए जाते हैं।

## अजवायन

इस बीजीय मसाले का उपयोग पेचिस, गर्मी तथा रजस्वला से संबंधित रोगों के उपचार हेतु आयुर्वेदिक औषधियों में किया जाता है। यह गले व सर्दी के रोगियों के लिए रामबाण का कार्य करती है।

## सोवा

यह श्वास संबंधी रोगों में असरकारक होता है। इसके सत का उपयोग वायुनाशक, उल्टी रोकने, दस्त, आँतों का दर्द आदि में किया जाता है। यह ग्राइप वाटर का मुख्य अवयव है।

## कलौंजी

कलौंजी मुख्य रूप से वायुनाशक, अग्निदीपक, मूत्रवर्धक तथा पाचक का कार्य करता है।

## स्याहजीरा

यह मुख्यतः वायुनाशक एवं शांतिदायक का कार्य करता है।

## उन्नत किस्में

**जीराः** आरएस–1, गुजरात जीरा–2, एमसी–43, गुजरात जीरा–3, आरजेड–19, गुजरात जीरा–4, आरजेड–209 और गुजरात जीरा–1 ।

**मेथीः** आरएमटी–1, आरएमटी–143, आरएमटी–303, आरएमटी–305, राजेन्द्र क्रान्ति, पूसा अर्लीबंचिग, लाम सलेक्शन–1, को–1, एएम–1, एएम–2, एचएम–103, हिसार सोनाली, हिसार सुवर्णा, हिसार माधवी, हिसार मुक्ता और पूसा कसूरी ।

**धनियाः** आरसीआर–41, एआरसीआर–20, एआरसीआर–435, एआरसीआर–436, एआरसीआर–446, एआरसीआर–684 एएसीआर–1, एपूसा सलेक्शन–360, गुजरात धनिया–1, गुजरात धनिया–2, सिन्धु, सीएस–6 (स्वाथि), सीएम–4 (स्वाथि), सीएस–287, को–1, को–2, को–3, राजेन्द्र स्वाति, पंत हरितमा, हिसार सुगंध, हिसार आनन्द, हिसार सुरभि ।

**सौंफः** आरएफ–10, आरएफ–125, आरएफ–35, गुजरात सौंफ–1 गुजरात सौंफ–2, गुजरात सौंफ–11, को–1, एफ–1 और हिसार स्वरूप

**अजवायनः** अजमेर अजवायन–1, अजमेर अजवायन–2, प्रताप अजवायन–1, गुजरात अजवायन–1, लाम सलेक्शन–1, लाम सलेक्शन–2, आरए–1–80, आर ए–19–80

**सोवाः** अजमेर डिल–1, अजमेर डिल–2

**कलौंजीः** अजमेर कलौंजी–1, आजाद कलौंजी, एन.एस.–44, राजेन्द्र श्यामा, कालाजीरा

**स्याहजीराः** ए कार, सलेक्शन–94, सलेक्शन–91, केरम कारवी एल

## बीजीय मसालों की नवीनतम वैज्ञानिक उत्पादन विधि

बीजीय मसाला फसलें सामान्यतया शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगाई जाती है। इनके लिए मुख्य रूप से बलुई व दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त रहती है। मिट्टी में पर्याप्त कार्बनिक खाद व उचित जलनिकास इनके उत्पादन को बढ़ाने में सहायक है।

अच्छी उपज के लिए खेत की तैयारी के समय सावधानी व मेहनत की आवश्यकता होती है। खरीफ की फसल की कटाई के पश्चात् खेत की गहरी जुताई आवश्यक है। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल तथा बाद में दो जुताई हैरो चलाकर करनी चाहिए। खेत की जुताई के समय ध्यान रखना चाहिए कि खेत में खरपतवार, पत्थर, कंकड, ढ़ेले आदि ना रह जाए तथा मिट्टी भुर–भुरी व समतल हो जाए ताकि इसमें बीज का जमाव सही हो। समतलीकरण के पश्चात उचित आकार की क्यारियां बनाना चाहिए, ताकि सिंचाई व निराई–गुड़ाई आसानी से हो सके। दीमक व भूमिगत कीटों से बचाव हेतु बुआई से पहले 4 प्रतिशत एण्डोसल्फान या मिथाइल पेराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण 25 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से खेत में डालकर मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

## बुआई का समय व बीज दर

सभी बीजीय मसाला फसलें रबी की फसलें हैं। इनकी बुआई प्रायः मध्य अक्तूबर से नवम्बर माह तक की जाती है। जीरे की फसल के लिए बुआई का उपयुक्त समय अक्तूबर माह के अन्तिम सप्ताह से नवम्बर माह के मध्य तक है। बुआई में देरी वृद्वि में रूकावट, बीमारियों व कीटों के प्रकोप का कारण बनती है जिससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। बीज दर 12–15 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर है। धनिया की फसल के लिए बुआई का उपयुक्त समय मध्य अक्तूबर से मध्य नवम्बर तक है। बुआई में देरी से माहू व बीमारियों का प्रकोप होता है तथा वृद्वि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। दक्षिण भारत में धनिया वर्ष में दो बार मई व अक्तूबर में बोया जाता है। सिंचित व असिंचित फसल की बुआई के लिए क्रमशः 10–12 तथा 20–25 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। मेथी के लिए बुआई का उपयुक्त समय मध्य अक्तूबर से नवम्बर का प्रथम सप्ताह है। बुआई में देरी अवांछनीय है। बीज दर 20 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर है।

## बुआई की विधियाँ

### कतार/पंक्ति विधि

वैज्ञानिक रूप से यह विधि अधिक उपयोगी है इसमें बुआई के लिए कतारों के मध्य 25–30 सेंमी. की दूरी रखते हैं। इसमें पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेंमी. रखी जानी चाहिए। दोनो विधियों में यह ध्यान रखना चाहिए की बीज 2–5 सेंमी. गहराई पर ही रहे। अगर बोने से पहले बीजों को 8–10 घंटे पानी में भिगो दें तो अंकुरण अच्छा होता है।

### छिड़काव विधि

इस विधि में क्यारियां बनाकर बीजों को समान रूप से छिड़क दिया जाता है। छिड़काव के पश्चात उन पर मिट्टी की परत चढ़ा देते हैं।

### बीजोपचार

बीज जनित रोगों से बचाव के लिए बीजों को बाविस्टीन/थाइरम/सेरेसन द्वारा 2.5 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

### खाद व उर्वरक

बुआई के 30–35 दिन पूर्व 10–15 टन प्रति हैक्टर गोबर या कम्पोस्ट की खाद खेत में भली–भांति मिला देनी चाहिए। उर्वरकों के उपयोग से पहले प्रयोगशाला में मृदा परीक्षण के आधार पर फसल विशेष की जरूरत अनुसार इनका उपयोग करना चाहिए। असिंचित फसल में 30 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन व 30 कि॰ग्रा॰ फास्फोरस प्रति हैक्टर देना चाहिए। सिंचित फसल में 60 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन, 30 कि॰ग्रा॰ फास्फोरस व 20 कि॰ग्रा॰ पोटाश प्रति हैक्टर देना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूर्ण मात्रा अंतिम जुताई के समय तथा शेष आधी नाइट्रोजन दो भागों में 30 व 60 दिन के अंतराल पर देनी चाहिए। जैविक खाद का उपयोग भी लाभदायक होता है।

## अन्तर सस्य क्रियाएं एवं खरपतवार नियंत्रण

जीरे की फसल आरंभिक अवस्था में काफी धीमी गति से वृद्वि करती है। इसमें खरपतवार नियंत्रण व वायु संचार के लिए दो–तीन निराई–गुडाई 30 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए। अगर प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण ना किया जाए तो यह फसल को अच्छी प्रकार वृद्वि नहीं करने देता जिससे उत्पादन पर विपरीत असर पड़ता है। पौधों के बीच की दूरी 10 सेंमी. रखनी चाहिए ताकि पौधों की समुचित वृद्वि हो। कुछ रसायनों जैसे फ्लोरेलीन 1 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से बुआई

पूर्व तथा पेन्डीमेथालिन 1 कि॰ग्रा॰ 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव कर खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। अगर भूमि नमीयुक्त हो तो परिणाम उत्तम प्राप्त होता है। एक ही खेत में बार–बार जीरे की फसल लेने से रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। अतः उचित फसलचक्र अपनाना अति आवश्यक है।

## सिंचाई

अगर आरम्भिक अवस्था में भूमि शुष्क हो तो हल्की सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है अन्यथा बुआई के पश्चात् हल्की सिंचाई करनी चाहिए। मृदा व जलवायु के आधार पर जीरे को 3–5, धनिया, मेथी को 4–6 व सौंफ को 8–10 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पौधों को उनकी वृद्वि अवस्था, पुष्पन व दाने बनने के समय पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है जिसका समुचित प्रबंधन आवश्यक है।

## फसल संरक्षण

बीजीय मसालों को शरद ऋतु में बोया जाता है यह फसलें मुख्यतः एक ही कुल से संबंधित है जिससे इनमें बीमारियों का प्रकोप भी लगभग एक समान ही होता है। इनके प्रमुख उकठा रोग (विल्ट), झूलसा, छाछ्या, तने की सूजन, मृदुरोमिल फफूंद, मूल गलन आदि है। इन रोगों से बचाव व निदान के लिए क्रमशः निम्नलिखित उपाय करने चाहिएः

- बीज को सेरेसन/बाविस्टीन/कैप्टान द्वारा 2.5 ग्राम प्रति कि॰ग्रा॰ बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।
- झुलसा रोग से बचाव के लिए एन्डोफील एम–45 की 0.8 से 1.0 कि॰ग्रा॰ मात्रा को 400–500 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर फसल पर छिड़काव करना लाभदायक होता है।
- छाछ्या रोग के निदान के लिए 1 कि॰ग्रा॰ घुलनशील गंधक/500 मिली. कैराथेन/700 ग्राम केलेकिसन का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव दोहराया जा सकता है।
- तने की सूजन से फसल को बचाने के लिए बुआई से पूर्व बावीस्टीन (1.5 ग्राम) तथा थाइरम (1.5 ग्राम) प्रति कि॰ग्रा॰ बीज दर से बीजोपचार के पश्चात् बुआई करनी चाहिए।
- मृदुरोमिल फफूंद रोग के नियंत्रण के लिए कॉपरयुक्त फफूंदनाशी जैसे कि बलाईटोक्स, फाइटोलन, नीली कॉपर या डाईफोलटॉन के 0.2 प्रतिशत सान्द्रता वाले 500 लीटर घोल का प्रति हैक्टर में छिड़काव आवश्यक है।
- मूलगलन रोग में बीज को पहले किसी उपयुक्त फफूंदनाशी द्वारा बीजोपचारित करना चाहिए।
- इन सब रासायनिक निदानों के अतिरिक्त उचित फसल चक्र, समय पर बुआई, उचित व उन्नत किस्म का चयन व स्वस्थ बीजों का चुनाव फसल को रोगों से बचाया जा सकता है।

## कीट एवं उनकी रोकथाम

रोगों की भाँति एक ही कुल से संबंधित होने के कारण बीजीय मसाला फसलों में कीट लगने की समस्या भी एक ही तरह की पाई जाती है। चूसक कीट इन फसलों के लिए अधिक नुकसानदायक है। बीजीय मसाला फसलों में लगने वाले प्रमुख कीट निम्न हैः

रस चूसने वालेः चैपा/मोयला, थ्रिप्स, फुदका, सफेद मक्खी व माइट (बरूथी)

## प्रबंधन

- फसलों की उचित समय पर बुआई करना
- नीम तेल 1–2 प्रतिशत, करंज तेल 1–2 प्रतिशत, नीम बीज अर्क 2–5 प्रतिशत जैसे वानस्पतिक कीटनाशकों का उपयोग
- बीज की उचित मात्रा व पौधों के मध्य उचित दूरी रखना
- उर्वरकों की परीक्षण के आधार पर निर्धारित उचित संतुलित मात्रा का उपयोग
- मित्र कीटों जैसे क्राईसोया व काक्सीनेला का संरक्षण करना
- रासायनिक कीटनाशकों जैसे डाइमिथेएट (1 मि.ली.), थायामेथेजान (1 ग्राम), इमिडाक्लोराप्रिड

(5 मि.ली.), तथा एण्डोसल्फान (1 मि.ली.), प्रति लीटर में घोल बनाकर 10–15 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना

**पर्ण सुरंगक कीट** फसलों को काफी नुकसान पहुँचाते हैं। इनके प्रबंधन के लिए फसल की समय पर सिंचाई करे, क्षतिग्रस्त पत्तियों को तोड़ कर जला दें व रासायनिक कीटनाशकों जैसे एण्डोसल्फान (1 मि.ली.) प्रति लीटर का छिड़काव करें।

**बीज भेदक कीट** के प्रभाव से बीज की उपज व गुणवत्ता प्रभावित होती है। इससे बचाव के लिए बीज की उचित मात्रा, निर्धारित दूरी, वानस्पतिक व रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करें।

**सीड बग** बीजों को चूसकर उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करते है। इसके प्रबंधन के लिए नीम जनित कीटनाशकों व डाइमिथेएट का छिड़काव करना आवश्यक होता है।

**इल्ली, दीमक, सूंडी** जैसे नुकसानदायक कीटों से फसल को सुरक्षित रखने के लिए खेतों के चारो तरफ सफाई रखनी चाहिए व बाधक बाड़ लगानी चाहिए। फिरामॉन व प्रकाश प्रपंच लगाकर इनके व्यसकों को खत्म करना चाहिए। कीट भक्षी पक्षियों को संरक्षण देना चाहिए। वानस्पतिक व रासायनिक कीटनाशकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

## फसल कटाई एवं उपज

बीजीय मसाला फसलें औसतन 80–130 दिन में पककर कटाई के लिए तैयार हो जाती है। जीरे की फसल किस्म, सिचांई व्यवस्था, जलवायु आदि के अनुसार 90–120 में पक जाती है। फसल कटाई के लिए पौधों को हाथ से उखाड़ा जाता है। अच्छी गुणवत्ता वाला जीरा प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि कटाई निर्धारित समय पर की जाए। फसल को सुखाकर बीज को अलग किया जाता है। बीजों की औसाई कर शुद्विकरण कर लेते हैं तथा सूखने के पश्चात् बोरियों में भर लेते हैं। बोरियों में भरते समय नमी अधिक न हो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। कृषि की उन्नत व नवीनतम वैज्ञानिक सस्य क्रियाएं व प्रबंधन विधियाँ अपनाकर औसतन 8–10 कुण्टल प्रति हैक्टर जीरे की उपज प्राप्त की जा सकती है।

धनिये की फसल की किस्म व जलवायु के आधार पर पककर तैयार होने की अवधि 90–140 दिन है। मुख्य छत्रकों का रंग हल्का पीला होते ही कटाई शुरू कर देनी चाहिए। अधिक देरी से रंग व गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कटाई पश्चात् दानों का रंग सुरक्षित रखने के लिए इसे छाया में सुखाना चाहिए तथा दाने निकालने के पश्चात औसाई कर पर्याप्त नमी पर बोरियों में भर देना चाहिए। नवीन वैज्ञानिक विधियाँ व उन्नत तकनीक अपना कर सिंचित फसल से 12–15 कुण्टल व बारानी फसल से 5–8 कुण्टल प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

सौंफ की कटाई आवश्यक उत्पाद के आधार पर की जाती है। छत्रकों को अगर परागण के 30 से 40 दिन बाद जब दानों का आकार पूर्ण विकसित दानों की अपेक्षा आधा हो तब काटा जाए जो उत्तम किस्म की चबाने योग्य लखनवी सौंफ प्राप्त की जा सकती है। कटाई के पश्चात् दानों को साफ जगह पर छाया में सुखाना चाहिए। उत्तम गुणवत्ता वाली पकी हुई सौंफ प्राप्त करने के लिए छत्रकों का रंग पीला होने से पूर्व ही तोड़ लेना चाहिए। सभी छत्रक अलग–अलग समय पर पककर तैयार होतें हैं अतः फसल की कटाई 3–4 चरणों में की जाती है। छत्रकों को छाया में सुखाकर बीज अलग करके औसाई के पश्चात् बोरियों में भरना चाहिए। उपयुक्त नमी का पूरा ध्यान रखना चाहिए। वैज्ञानिक विधियों व उन्नत किस्मों को अपनाकर 15–20 कुण्टल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है। लखनवी सौंफ की उपज 5–7.5 कुण्टल प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।

मेथी की कटाई फसल के पीली पड़ने व पत्तियों के गिरने के पश्चात् कर लेनी चाहिए। अगर कटाई में देरी की जाए तो दाने सूखकर छिटकने लगते हैं। पौधों को सुखाकर दानों को अलग कर लिया जाता है। उपयुक्त नमी का ध्यान रखते हुए दानों को बोरियों में भर दिया जाता है। आधुनिक तकनीकी, वैज्ञानिक विधियों व उन्नत किस्म का चयन कर देसी मेथी से 10–15 कुण्टल प्रति हैक्टर व कसूरी मेथी से 6–8 कुण्टल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है।

**– समाप्त –**

# शुष्क क्षेत्रों में उद्यानिक फसलों की व्यावसायिक खेती में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली का महत्त्व

सत्येन्द्र कुमार[1], राजबीर सिंह[2], भास्कर नरजरी[1], एवं एस॰के॰ कामरा[1]

[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

[2]प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

ऐसे क्षेत्र जहाँ औसत वार्षिक वर्षा 38 सेंमी. एवं 38–80 सेंमी. होती है, उन्हें क्रमशः शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के रूप में चिह्नित किया जाता है। भारतवर्ष के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 31 प्रतिशत हिस्सा शुष्क अथवा अर्धशुष्क है। इन क्षेत्रों में कम वर्षा के अलावा दूसरी सबसे बड़ी समस्या इसका असमान वितरण है। वार्षिक औसत की लगभग 75 प्रतिशत वर्षा जून से सितम्बर माह तक होती है। वर्षा की अनिश्चित प्रकृति एवं सीमित जल उपलब्धता इन क्षेत्रों में उद्यानिक फसलों की व्यावसायिक खेती में सबसे बड़ी बाधा है। यद्यपि आजादी के बाद भारत सरकार ने विभिन्न बहुउद्देशीय जल परियोजनाओं के माध्यम से इन क्षेत्रों में सिंचाई जल उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है एवं इसके अच्छे परिणाम भी प्राप्त हुए हैं। हरित क्रान्ति के आगाज में इन विकसित जल संसाधनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जिसका परिणाम आज हमारे सामने है। आज हम विश्व के सर्वाधिक खाद्यान्न, फल एवं सब्जी उत्पादन करने वाले अग्रणी पाँच देशों में शुमार हैं।

उद्यानिक फसलों विशेषकर सब्जियों की खेती में सिंचाई का बहुत महत्व है। अधिकांश सब्जियों में जल की मात्रा अधिक होती है तथा मुख्यतः ताजे उत्पाद के रूप में इस्तेमाल होती है। इन फसलों में समान आकार, रंग–रूप एवं ताजगी बनाये रखने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि सब्जियों की व्यावसायिक खेती के लिए सिंचाई की अच्छी सुविधा होना अति आवश्यक है। सिंचाई के बिना अर्धशुष्क एवं शुष्क क्षेत्रों में फल एवं सब्जियों की व्यावसायिक खेती लाभदायक नहीं हो पाती है। सीमित जल उपलब्धता के कारण महत्वपूर्ण फसलों की संवेदनशील अवस्था पर पर सिंचाई की व्यवस्था न होने के कारण फसलों की बढ़वार, उत्पादन एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जहाँ तक फलदार वृक्षों की बात है ये जल की कमी के बावजूद भी काफी दिन तक हरे–भरे दिखते हैं, जिससे यह गलत अवधारणा बनती है कि इन्हें सिंचाई की बहुत आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि सीमित जल उलब्धता की स्थिति में किसान सब्जियों एवं खाद्यान्न फसलों की सिंचाई को ज्यादा महत्व देते हैं। परन्तु ऐसा देखा गया है कि यदि फलदार वृक्षों में सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो तो अधिक उत्पादन एवं उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद प्राप्त किये जा सकते हैं एवं शुष्क क्षेत्रों में भी फलदार वृक्षों की खेती लाभकारी बन सकती है। उदाहरण के तौर पर किन्नू में यदि फूल आने के समय सिंचाई की उचित व्यवस्था न हो तो अधिक तापमान की वजह से कई बार फूलों के गिरने (झड़ने) की समस्या हो जाती है, परिणामस्वरूप पैदावार काफी कम हो जाती है। कई उद्यानिक फसलों में ऐसा भी देखा गया है कि फल पेड़ पर ही फटने लगते हैं। यह समस्या कई बार भूमि में उचित नमी नहीं होने के कारण भी उत्पन्न होती है। इस प्रकार सिंचाई उद्यानिक फसलों की व्यावसायिक खेती की एक मूलभूत आवश्यकता है।

## सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली आज की जरुरत

जल उपयोग के आंकड़े दर्शाते हैं कि उपलब्ध जल का एक बड़ा हिस्सा कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त होता है। परन्तु यह भी सत्य है कि अन्य क्षेत्रों जैसे उद्योग, ऊर्जा तथा घरेलू क्षेत्रों की बढ़ती मांग के कारण कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी दिन प्रतिदिन घट रही है। सन् 2000 में उपलब्ध जल संसाधन का लगभग 79 प्रतिशत हिस्सा कृषि में उपयोग होता था जो एक अनुमान के अनुसार सन् 2025 तक घटकर 73 प्रतिशत हो जाएगा। इस प्रकार आने वाले दिनों में, निरन्तर कम होते हुए प्राकृतिक संसाधनों से देश की बढ़ती जनसंख्या को खाद्यान्न, फल, सब्जी उपलब्ध कराना एक बहुत बड़ी चुनौती होगी। इसके लिए

आवश्यक है कि उन्नत तकनीकियों के माध्यम से फसल उत्पादन एवं जल उत्पादकता बढ़ाई जाय।

देश की बढ़ती जनसंख्या, परिवहन के दौरान होने वाली उत्पाद की क्षति, बीज की आवश्यकता एवं पर्याप्त मात्रा (बफर स्टाक) इत्यादि को आधार मानकर यदि खाद्यान्न की आवश्यकता का अनुमान लगायें तो ज्ञात होता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन उपलब्ध कराने के लिए सन् 2025 में लगभग 320 मिलियन टन तथा सन् 2025 में करीब 494 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। पिछली शताब्दी में देश की सिंचाई जल आवश्यकता लगभग 428 घन मीटर थी। ऐसा अनुमान है कि सन् 2025 एवं 2050 में सिंचाई के लिए क्रमशः लगभग 611 एवं 807 घन मीटर जल की आवश्यकता होगी। दूसरी तरफ शहरीकरण, औद्योगिकीकरण एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण उपलब्ध जल संसाधनों पर दबाव और बढ़ रहा है। इसका असर हमारे भूजल संसाधनों पर आसानी से देखा जा सकता है। आंकड़े दर्शाते हैं कि देश के 15 प्रतिशत हिस्सों में भूजल स्तर बहुत तेजी से गिर रहा है। उदाहरण के तौर पर तालिका 1 में पंजाब एवं हरियाणा के कुछ चुनिन्दा जिलों के गिरते भूजल स्तर को सारणीबद्ध किया गया है। हरियाणा एवं पंजाब में गिरते औसत भूजल स्तर का आंकलन क्रमशः वर्ष 1974–2008 एवं 1998–2008 के भूजल स्तर के आंकड़ों के आधार पर किया गया है। तालिका 1 से स्पष्ट है कि इन प्रदेशों में भूजल स्तर प्रतिवर्ष 1–2.5 फीट की गति से नीचे जा रहा है। भूजल का अत्यधिक दोहन कृषि के टिकाऊपन हेतु किसी भी अवस्था में शुभ संकेत नहीं माना जा सकता है। सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प की जगह अब सबमर्सीबल पम्प की आवश्यकता पड़ रही है, परिणामस्वरूप आरंभिक लागत के साथ–साथ बिजली की खपत भी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है।

सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि अब भी काफी किसान परंपरागत सिंचाई विधियों पर ही निर्भर हैं जिसकी जल अनुप्रयोग दक्षता कम (30–40 प्रतिशत) होने के कारण सिंचाई जल का एक बड़ा हिस्सा व्यर्थ चला जाता है।

आज आवश्यकता है कि सिंचाई की उत्तम विधियों को अपनाकर जल अनुप्रयोग दक्षता को बढ़ाते हुए सीमित

**तालिका 1: हरियाणा एवं पंजाब के चुनिंदा जिलों में वर्तमान भूजल स्तर एवं गिरावट दर**

| जिला | वर्ष 2008 भूजल स्तर (मी.) | भूजल स्तर में औसत गिरावट (सेंमी. प्रति वर्ष) |
|---|---|---|
| **हरियाणा** | | |
| करनाल | 15.2 | 28 |
| कुरूक्षेत्र | 28.8 | 55 |
| कैथल | 18.3 | 36 |
| पानीपत | 14.5 | 29 |
| गुड़गांव | 22.6 | 47 |
| महेन्द्रगढ़ | 41.1 | 73 |
| रेवाड़ी | 22.2 | 31 |
| **पंजाब** | | |
| अमृतसर | 12.9 | 50 |
| फतेहगढ़ साहिब | 16.8 | 61 |
| जालंधर | 17.4 | 60 |
| कपूरथला | 13.9 | 72 |
| लुधियाना | 16.7 | 64 |
| मोगा | 16.4 | 60 |
| पटियाला | 15.6 | 61 |
| संगरूर | 19.6 | 62 |

मात्रा में उपलब्ध जल से भरपूर लाभ प्राप्त किया जाय। सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ, जिनकी जल अनुप्रयोग दक्षता लगभग 80 प्रतिशत या इससे अधिक होती है, सीमित जल संसाधनों के कुशल एवं प्रभावी उपयोग हेतु एक सशक्त माध्यम हो सकते हैं। इस प्रकार यदि भारत में सूक्ष्म सिंचाई को व्यापक स्तर पर अपनाया जाय तो यह जल, ऊर्जा एवं खाद्य सुरक्षा की काफी हद तक गारंटी बन सकती है। यह सर्वविदित है कि कृषि क्षेत्र जल का सबसे बड़ा उपभोक्ता है तथा उपलब्ध जल का लगभग 79 प्रतिशत सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जाता है। यदि इसका एक छोटा हिस्सा भी इन सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों को अपनाकर बचाया जा सके तो दूसरे क्षेत्रों की जल की आवश्यकता को पूरा करने में एक महत्वपूर्ण सहयोग होगा। इसी प्रकार उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा प्रदान कर सकती है। देखा

जाय तो प्रति इकाई क्षेत्रफल अथवा उत्पाद हेतु सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में परंपरागत विधियों की तुलना में कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, बढ़ती खाद्यान्न आवश्यकता के लिए आवश्यक ऊर्जा की खपत भी कम की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में जल एवं खाद का नियंत्रित प्रयोग परंपरागत विधि की तुलना में बेहतर फसल प्रबधन का अवसर प्रदान करता है, परिणामस्वरुप उत्पादन के साथ–साथ उत्पाद की गुणवत्ता भी अच्छी रहती है। इस प्रकार व्यापक स्तर पर सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों का सिंचाई के लिए प्रयोग जल, ऊर्जा एवं खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ किसान की आय में वृद्धि एवं पर्यावरण संरक्षण में सहायक हो सकता है।

## सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों का चुनाव

सिंचाई प्रणालियाँ जिनमें पानी जल्दी–जल्दी (अधिक बारम्बारता) के साथ परन्तु कम मात्रा में भूमि सतह पर या उपसतह में सीधे प्रयोग होता है, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के नाम से जानी जाती है। इन प्रणालियों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है, (क) ड्रिप सिंचाई प्रणाली जिसमें पौधों की जड़ों के आस–पास बूँद–बूँद जल देकर जड़ क्षेत्र को हमेशा नम रखा जाता है तथा (ख) फव्वारा विधि, जिसमें जल को भूमि की सतह पर बौछार (वर्षा की बूँद) के रूप में गिराया जाता है। ड्रिप, सूक्ष्म फव्वारा, फव्वारा एवं रेनगन के नाम से विभिन्न सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ बाजार में उपलब्ध है जिनका प्रयोग विभिन्न प्रकार की फसलों के उत्पादन हेतु किया जा सकता है। इनकी उपयुक्तता का चुनाव करते समय पानी की उपलब्धता, फसल ज्यामिति, फसल की जल आवश्यकता, मृदा की संरचना, भूमि स्थलाकृति, वायुगति एवं फसल चक्र आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसके अतिरिक्त इनकी प्रारम्भिक लागत एवं फसल उत्पादन से होने वाली आमदनी, इनके चुनाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रक्षेत्र अनुसंधान के परिणामों के आधार पर विभिन्न फसलों के लिए उपयुक्त प्रणालियों का विवरण तालिका 2 में दिया गया है।

मोटे तौर पर यह प्रणालियों के चुनाव में सहायक हो सकता है, परन्तु चुनाव करते समय स्थानीय कारकों का भी ध्यान रखना चाहिए।

**तालिका 2 : विभिन्न फसलों के लिए संस्तुत सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली**

| सिंचाई प्रणाली | फसल प्रकार | फसलों के नाम |
|---|---|---|
| बूँद– बूँद | बागवानी | सभी प्रकार के बागों के लिए उपयुक्त |
| | सब्जी | आलू, प्याज, टमाटर, लहसून, अदरक, गाजर, मूली, करेला, गोभी, लौकी, पालक, खीरा, मिर्च, बैंगन |
| | फल | केला, अंगूर, पपीता, तरबूज, खरबूजा, स्ट्राबैरी |
| | अन्य | हल्दी, गन्ना, कपास, मक्का, मूंगफली, सफेद मूसली, चाय, कॉफी एवं सभी प्रकार के फूल |
| फव्वारा / रेन गन | पत्ते वाली सब्जियाँ | मटर, पालक, लेट्यूस |
| | अन्य फसलें | गेहूँ, सरसों, गन्ना, सोयाबीन, सूरजमूखी, दलहन, तिलहन, चाय, कॉफी, रबर, मसाले एवं चारे की फसलें |
| माइक्रो स्प्रिंकलर | बागवानी के नीचे सिंचाई हेतु | किन्नू, अमरूद, आम, अनार, नारियल, सेब, लीची, आँवला |
| | सब्जी | आलू, प्याज, लहसून, पालक, धनियाँ |
| | अन्य | कार्नेसन, गुलाब, ग्लैडूलस, तम्बाकू |
| मिनी स्प्रिंकलर | सब्जियाँ | बेबी कार्न, शलजम, मटर, टमाटर, लौकी (शुष्क क्षेत्रों में) आलू, प्याज, टमाटर, लहसून, अदरक, गाजर, मूली, तथा अन्य पत्ते वाली सब्जियाँ एवं पौधशाला |
| | अन्य | चना, दलहन, इसबगोल, धनियाँ, जीरा, नींबू घास, सफेद मूसली, हल्दी, चाय, तम्बाकू |

ड्रिप प्रणाली

मिनी स्प्रिंकलर प्रणाली

माइक्रो स्प्रिंकलर प्रणाली

*विभिन्न फसलों में सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों का प्रयोग*

## उद्यानिक फसलें एवं सूक्ष्म सिंचाई

परंपरागत सिंचाई विधियों की जगह सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों के अपनाने के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई फायदे हैं। इन प्रणालियों को अपनाने से जल अनुप्रयोग दक्षता परंपरागत सिंचाई विधियों की तुलना में लगभग दो गुणा तक बढ़ सकती है (तालिका 3)। इसका तात्पर्य है कि सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों के प्रयोग से शुष्क क्षेत्रों में उपलब्ध सीमित जल संसाधनों के प्रभावी एवं कुशल प्रबंधन द्वारा अधिकतम उत्पादन, जल उत्पादकता एवं लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। तालिका 4 में दर्शाये गये आंकड़े सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली द्वारा उद्यानिक फसलों की सिंचाई करने से हुई जल की बचत एवं उत्पादन वृद्धि की पुष्टि करते हैं। अधिक आवृत्ति एवं कम मात्रा में जल प्रयोग से सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली पौधों की बढ़वार के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर अच्छा उत्पादन सुनिश्चित करता है। उद्यानिक फसलों में विशेषकर फलदार वृक्षों में पौधे से पौधे का अंतराल अधिक होता है। इसमें ड्रिप प्रणाली द्वारा पूरे खेत के बजाय (जैसा कि परंपरागत विधि में करते है), पौधों के जड़ क्षेत्र में ही पानी देकर जल की बचत कर सकते हैं। कम जल से अधिक उत्पादन निश्चित तौर पर जल उत्पादकता में वृद्धि की गारंटी है।

ऐसा पाया गया है कि सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली परंपरागत सिंचाई विधि की तुलना में सब्जियों की खेती में लगभग 20–60 प्रतिशत पानी की बचत एवं 25–60 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि करने में सक्षम है। वहीं फलदार वृक्षों में जल की बचत एवं उत्पादन वृद्धि क्रमशः 20–40 प्रतिशत एवं 20–70 प्रतिशत पायी गई।

### तालिका 3 : विभिन्न सिंचाई विधियों की तुलनात्मक सिंचाई दक्षता

| सिंचाई दक्षता (प्रतिशत) | | | |
|---|---|---|---|
| सिंचाई दक्षता | परंपरागत विधि | फव्वारा सिंचाई | बूँद– बूँद सिंचाई |
| प्रवाह | 40–50 (नहर) | 100 | 100 |
| अनुप्रयोग | 60–70 (कुआँ) | 70–80 | 90 |
| कुल | 30–35 | 50–60 | 80–90 |

## नहरी जल का कुशल प्रबंधन

जल दक्षता बढ़ाने के लिए नहरी सिंचित क्षेत्रों में उपलब्ध पानी सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली द्वारा प्रयोग एक अच्छा विकल्प हो सकता है। परन्तु इसमें सबसे बड़ी बाधा नहरी जल की उपलब्धता एवं सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों के संचालन समय में सामंजस्य बैठाना है। सामान्यतया ऐसा देखा गया है कि गर्मी के दिनों में नहरों में जल आपूर्ति किन्हीं

### तालिका 4 : सूक्ष्म प्रणाली द्वारा परंपरागत सिंचाई विधि की तुलना में जल की बचत एवं उद्यानिक फसलोत्पादन वृद्धि

| सब्जियाँ | जल की बचत (प्रतिशत) | उत्पादन वृद्धि (प्रतिशत) | फल | जल की बचत (प्रतिशत) | उत्पादन वृद्धि (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|---|---|
| आलू | 40–50 | 25–50 | किन्नू | 20–30 | 30–50 |
| प्याज | 20–30 | 25–40 | अमरूद | 20–25 | 40–50 |
| टमाटर | 40–60 | 40–60 | अनार | 20–40 | 20–30 |
| भिण्डी | 20–30 | 25–40 | आम | 30–40 | 60–70 |

**तालिका 5 : परंपरागत सिंचाई की तुलना में सूक्ष्म प्रणाली से उद्यानिक फसलों की जल दक्षता में वृद्धि**

| सब्जी | उत्पादन में परिवर्तन (प्रतिशत) | जल दक्षता में परिवर्तन (प्रतिशत) | फल | उत्पादन में परिवर्तन (प्रतिशत) | जल दक्षता में परिवर्तन (प्रतिशत) |
|---|---|---|---|---|---|
| आलू | 46 | 46 | किन्नू | 17 | 38 |
| प्याज | 2 | 34 | अनार | 24 | 45 |
| टमाटर | 5 | 49 | अमरूद | 67 | 53 |
| शिमला मिर्च | 51 | 47 | अंगूर | 23 | 134 |
| पत्ता गोभी | 2 | 150 | केला | 52 | 173 |

कारणों–जैसे जलाशयों में पानी की कमी अथवा सफाई, मरम्मत एवं रखरखाव की वजह से नियमित नहीं हो पाती है। इन परिस्थितियों में सूक्ष्म सिंचाई का मूल सिद्धांत थोड़ा–थोड़ा परंतु जल्दी–जल्दी सिंचाई, सफल नहीं हो पाता है, परिणामस्वरूप किसान अधिक लाभ देने वाली उद्यानिक फसलों की खेती या तो कर नहीं पाते या उससे पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं कर पाते हैं। पिछले कुछ समय से विभिन्न राज्य सरकारों ने केन्द्र सरकार की मदद से तालाब में नहरी पानी को एकत्रित करके सूक्ष्म सिंचाई द्वारा अनुप्रयोग की योजना को वित्तीय सहायता प्रदान कर, बढ़ावा दे रही है। हाल ही में पंजाब में तालाब में जल भंडारण करके ड्रिप द्वारा फलदार वृक्षों की सिंचाई एवं हरियाणा में फव्वारा सिंचाई द्वारा प्रयोग का सफल प्रयास किया गया है। सामान्य तौर पर परंपरागत विधि में दो सिंचाई में 7–15 दिन का अंतराल होता है और कई बार नहर बंद होने के कारण अधिक भी हो जाता है। जिसका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है एवं फसल उत्पादन काफी कम हो जाता है। वहीं यदि किसान अपने हिस्से के नहर के पानी की कुछ मात्रा को इकट्ठा कर सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों द्वारा फसलों में विवेकपूर्ण एवं नियंत्रित तरीके से प्रयोग करें तो जल की बचत के साथ–साथ उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि कर सकता है। इस प्रकार नहरी सिंचित क्षेत्रों में भी परंपरागत विधि की जगह सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली अपना कर अच्छे परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

## मलजल का उद्यानिक खेती में प्रयोग

सूक्ष्म सिंचाई का एक प्रतिरूप उपसतही ड्रिप प्रणाली, मलजल का उद्यानिक फसल उत्पादन हेतु सुरक्षित प्रयोग का अवसर प्रदान करती है। मलजल में अक्सर सूक्ष्म जीवाणु एवं रसायन मौजूद होते हैं जो संपर्क में आने पर मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं। परंतु उपचारित मलजल को इस प्रणाली द्वारा जमीन की सतह से नीचे सफलतापूर्वक वितरित किया जा सकता है। इस प्रकार फसल एवं मनुष्य दोनों ही मलजल के संपर्क में आने से बच जाते है तथा संदूषण की संभावना काफी कम हो जाती है। इस प्रकार मलजल का कृषि में सफल अनुप्रयोग, अप्रत्यक्ष रुप में अच्छे जल की बचत है जिसका उपयोग अन्य क्षेत्रों में किया जा सकता है।

## खारे जल से सिंचाई की संभावनाएं

खारे जल को सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली विशेषकर बूँद–बूँद सिंचाई द्वारा फसल उत्पादन हेतु सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। खारे जल क्षेत्रों में जहाँ पारंपरिक सिंचाई विधियाँ कम कारगर साबित हुई है वहाँ बूँद–बूँद प्रणाली अधिक सिंचाई आवृत्ति व लगातार नमी बनाए रखने के गुणों के कारण लवणों को जड़ों से दूर रखते हुये पौधों के जड़ क्षेत्र में लवणों की सांद्रता कम बनाए रखती है जिससे पौधों की वृद्धि ज्यादा प्रभावित नहीं होती व अच्छी पैदावार प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म प्रणाली द्वारा जल में घुलनशील पोषक तत्वों, कीटनाशकों और कवकनाशकों का प्रयोग कीड़े मकोड़े तथा मृदा जनित बीमारियों को समाप्त करने के लिए ज्यादा कारगर साबित हो सकता है क्योंकि रसायनों का वितरण जड़ क्षेत्र में या पत्तियों पर सीधे होता है अतः कम सांद्रता का घोल भी अधिक प्रभावी होता है।

## नहर कमाण्ड में सूक्ष्म प्रणाली द्वारा उद्यानिक फसलों की खेती की सार्थकता का आंकलन

सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों द्वारा नहरी सिंचित क्षेत्रों में उद्यानिक फसलों की खेती की सार्थकता का आंकलन केन्द्रीय कटाई उपरान्त अभियांत्रिकी एवं तकनीकी

संस्थान (सीफेट), अबोहर के अनुसंधान प्रक्षेत्र पर किया गया। फसल विविधीकरण के प्रयास के अंतर्गत परंपरागत कपास फसल की जगह फल एवं सब्जियों के उत्पादन की योजना बनाई गई। तालाब में नहर के पानी को एकत्रित कर सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों के संचालन हेतु नियमित जल उपलब्धता सुनिश्चित की गई। सब्जी की फसलों में प्याज, आलू, टमाटर एवं शिमला मिर्च तथा फलों में किन्नू, अनार एवं अमरूद का उत्पादन इन तकनीकियों के माध्यम से किया गया। फसल उत्पादन, जल उत्पादकता एवं प्राप्त शुद्ध लाभ के आधार पर इनकी सार्थकता का आंकलन किया गया। तालिका 6 में दिये अनुसंधान के परिणामों से यह स्पष्ट है कि उपलब्ध सीमित नहरी जल यदि सूक्ष्म सिंचाई पद्धति के माध्यम से प्रयोग किया जाय तो परंपरागत सिंचाई विधि की तुलना में अधिक क्षेत्रों को सिंचित किया जा सकता है जो उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि में सहायक हो सकता है। परिणाम इस बात की भी पुष्टि करते हैं कि जल संचयन एवं दक्ष सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियों का एकीकरण नहरी सिंचित क्षेत्रों में टिकाऊ खेती हेतु एक सशक्त विकल्प हो सकता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ जल की बचत के साथ–साथ उत्पादन एवं जल उत्पादकता में वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त इनके साथ जुड़े अन्य लाभ जैसे मलजल एवं क्षारीय जल का सिंचाई में उपयोग, अच्छे जल संसाधनों पर बढ़ रहे दबाव को कम करने में सहायक हैं। इन प्रणालियों को व्यापक स्तर पर अपनाकर सीमित जल संसाधनों का समुचित उपयोग एवं प्रभावी प्रबंधन किया जा सकता है तथा अधिक से अधिक क्षेत्र में फसलों को सुनिश्चित सिंचाई प्रदान कर अधिक उत्पादन, जल उत्पादकता एवं गुणवत्तायुक्त उत्पाद प्राप्त किए जा सकते हैं जो आने वाले वर्षों में देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक होगा।

*अनार*

*अमरुद*

*किन्नू*

*विभिन्न उद्यानिक फसलों में ड्रिप सिंचाई*

**तालिका 6 : नहर कमाण्ड में सूक्ष्म प्रणाली द्वारा उद्यानिक फसलों की खेती की सार्थकता का आंकलन**

| फसल | उत्पादन (कुण्टल प्रति हैक्टर) | | जल उत्पादकता (कि.ग्रा. प्रति घनमीटर) | | शुद्ध लाभ (रुपये प्रति हैक्टर) | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | सु॰ सिं॰ | प॰ सिं॰ | सु॰ सिं॰ | प॰ सिं॰ | सु॰ सिं॰ | प॰ सिं॰ |
| आलू | 29.80 | 22.60 | 12.48 | 8.03 | 42152 | 33920 |
| प्याज | 34.0 | 23.8 | 7.12 | 4.69 | 43113 | 33042 |
| टमाटर | 66.0 | 45.0 | 13.1 | 6.43 | 67475 | 36000 |
| शिमला मिर्च | 32.5 | 25.0 | 7.32 | 3.45 | 228148 | 178100 |
| किन्नू | 44.2 | 37.9 | 8.45 | 5.26 | 173334 | 126700 |
| अनार | 21.64 | 17.39 | 5.32 | 2.92 | 175472 | 130860 |
| अमरूद | 21.6 | 12.9 | 4.78 | 2.27 | 70627 | 17042 |

सू॰ सिं॰ – सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली, प॰ सिं॰ – परंपरागत सिंचाई विधि

**– समाप्त –**

# लवणीय जल क्षेत्रों में मेड़ पर बुआई करें और अधिक पैदावार लें

एस॰के॰ चौहान, आर॰बी॰ सिंह एवं आर॰एल॰ मीणा[1]

लवणीय मृदा एवं जल प्रबन्ध परियोजना
राजा बलवंत सिंह कृषि महाविद्यालय, बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश)
[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में फसल उत्पादन के लिए अपर्याप्त सिंचाई जल उपलब्धता इन क्षेत्रों के किसानों के लिए मुख्य समस्या है। फसलों के उत्पादन के लिए भूमिगत जल का दोहन बढ़ता ही जा रहा है अथवा कम वर्षा के कारण फसलों की सिंचाई की आवश्यकता पूरी करने के लिए ऐसा किया जा रहा है। आंकडो के अनुसार राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में 32–84 प्रतिशत भूजल सिंचाई की गुणवत्ता के लिए उपयुक्त ही नहीं है फिर भी आवश्यकता पड़ने पर इसे उपयोग किया जाता है जो कि भूमि में लवणता या क्षारीयता का विषैला प्रभाव छोड़ता है। इस तरह के निम्न व खराब गुणवत्ता वाले जल के निरन्तर प्रयोग करते रहने से लवणता व क्षारीयता की भीषण समस्या उत्पन्न हो जाती है। यह सर्वविदित है कि सही तकनीक का प्रयोग करने से सिंचाई के लिए कम उपयुक्त जल को भी फसल उत्पादन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

लवणीय जल वाले क्षेत्रों में फसलों की कम पैदावार का मुख्य कारण अंकुरण का कम होना तथा अंकुरण अवस्था में पौधों की संख्या कम होना है। कम अंकुरण होने का प्रमुख कारण मृदा में लवणों की सान्द्रता अधिक होना होता है। ऐसी परिस्थितियों में मेड़ों पर बुआई लाभप्रद रहती है। इसके लिए उपयुक्त बुआई विधि का प्रयोग करना चाहिए जिससे अंकुरण के लिए बीजों के पास कम मात्रा में लवण एकत्रित हों। लवणीय जल में इस प्रकार का कार्य केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा) व लवणीय मृदा एवं जल प्रबन्ध परियोजना, राजा बलवंत सिंह कृषि महाविद्यालय बिचपुरी, आगरा (उत्तर प्रदेश) में किया गया। इन अध्ययनों में मेड़ों की आकृति, सिंचाई प्रबन्ध करके अंकुरण के समय कम लवणता रखने का प्रयास किया गया जिससे फसलों की अंकुरण क्षमता बढ़ी।

**तालिका 1 : कपास की पैदावार (कुण्टल प्रति हैक्टर) पर बुआई विधियों का प्रभाव**

| बुआई की विधियां | कपास की पैदावार | | | |
|---|---|---|---|---|
| | प्रथम | द्वितीय | तृतीय | औसत |
| नियंत्रण | 18.3 | 24.6 | 13.9 | 18.9 |
| समतल | 1.9 | 1.7 | 1.6 | 1.7 |
| मेड़ों पर | 14.2 | 13.8 | 11.4 | 13.1 |
| ढलान पर | 11.3 | 10.7 | 9.9 | 10.6 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 4.3 | 2.9 | 2.2 | 3.1 |

इस तरह का एक प्रयोग कपास पर तीन वर्ष तक किया गया। इसमें कपास की एच–777 किस्म को सिंचाई जल की 8 डेसी सीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता में उगाया गया तथा यह पाया कि कपास की सबसे अधिक औसत पैदावार 18.9 कुण्टल प्रति हैक्टर अच्छी जल गुणवत्ता जल से सिंचाई की स्थिति में प्राप्त हुई। बुआई विधियों में मेड़ों पर बुआई में सबसे अधिक 13.1 कुण्टल प्रति हैक्टर प्राप्त हुई जो ढलान पर बुआई से 18.4 प्रतिशत तथा समतल बुआई से 83 प्रतिशत अधिक थी।

कपास–गेहूँ फसल चक्र पर दो वर्षीय प्रयोग के दौरान लवणीय जल के उपचार एवं बुआई विधियों का अध्ययन किया गया। औसत आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि कपास की उपज 8 डेसी सीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता वाले जल से सिंचाई की अपेक्षा 4 डेसी सीमन प्रति मीटर वाले जल की सिंचाई में 77 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुई। लेकिन 12 डेसी सीमन प्रति मीटर वाले जल की सिंचाई में अंकुरण न होने के कारण कोई पैदावार नहीं हुई (तालिका 2)।

## तालिका 2 : कपास तथा गेहूँ की उपज पर लवणीय जल व बुआई विधियों का प्रभाव

| उपचार | उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कपास | | | गेहूँ | | |
| | प्रथम | द्वितीय | औसत | प्रथम | द्वितीय | औसत |
| **वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)** | | | | | | |
| नियंत्रण | 18.2 | 17.2 | 17.7 | 35.9 | 34.1 | 35.0 |
| 4 | 17.8 | 15.7 | 16.8 | 37.4 | 34.6 | 36.0 |
| 8 | 4.1 | 4.2 | 4.2 | 36.5 | 31.9 | 34.2 |
| 12 | . | . | . | 33.0 | 29.8 | 31.1 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 2.9 | 1.6 | 2.2 | 1.8 | 2.1 | 1.9 |
| **बुआई विधियां** | | | | | | |
| समतल बुआई | 7.4 | 7.3 | 7.4 | 33.3 | 30.1 | 31.7 |
| मेड़ों पर बुआई | 12.6 | 11.2 | 11.9 | 38.1 | 34.4 | 36.3 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 2.1 | 1.1 | 1.6 | 3.2 | 1.6 | 2.4 |

बुआई विधियों में मेड़ों पर बुआई में सार्थक रूप से 35 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त हुई। गेहूँ की उपज में सिंचाई जल से सार्थक रूप से गिरावट आंकी गई। नियंत्रण एवं 4 डेसी सीमन प्रति मीटर में तथा 8 एवं 12 डेसी सीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता जल से सिंचाई में कोई अन्तर नहीं था लेकिन 8 एवं 12 डेसी सीमन प्रति मीटर की सिंचाई में अच्छे जल की अपेक्षा 13 प्रतिशत उपज कम प्राप्त हुई। इसी प्रकार बुआई विधियों में समतल बुआई की अपेक्षा मेड़ों पर बुआई करने से 12 प्रतिशत अनाज की अधिक पैदावार प्राप्त हुई।

गेहूँ में लवणीय जल के प्रकार, सिंचाई जल की मात्रा तथा बुआई विधियों के अध्ययन में पाया गया कि गेहूँ की उपज अच्छे तथा 4 डेसी सीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता में सार्थक रूप से बराबर तथा 8 एवं 12 डेसी सीमन प्रति मीटर में अच्छे जल से क्रमशः 6 तथा 12 प्रतिशत कम प्राप्त हुई। इसी प्रकार सिंचाई जल की मात्रा 40 से.मी. देने पर उपज सार्थक रूप से अधिक तथा 32 सेंमी. एवं 24 सेंमी. देने पर उपज क्रमशः 6 तथा 13 प्रतिशत कम आंकी गई। बुआई विधियों में मेड़ों पर बुआई करने पर दानों की उपज समतल बुआई की अपेक्षा 12 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुई (तालिका 3)।

## तालिका 3 : विभिन्न उपचारों में गेहूँ की उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर)

| उपचार | उत्पादन | | |
|---|---|---|---|
| | प्रथम वर्ष | द्वितीय वर्ष | औसत |
| **वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)** | | | |
| अच्छा जल | 40.4 | 31.9 | 36.0 |
| 4 | 39.7 | 32.8 | 36.0 |
| 8 | 33.9 | 25.2 | 29.5 |
| 12 | 28.5 | 19.8 | 24.0 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 2.0 | 1.3 | 1.0 |
| **सिंचाई जल मी मात्रा (सेंमी.)** | | | |
| 24 | 34.1 | 24.9 | 29.0 |
| 32 | 35.7 | 28.2 | 31.0 |
| 40 | 37.2 | 29.2 | 33.0 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 1.8 | 1.5 | 1.0 |
| **बुआई विधियां** | | | |
| समतल | 31.3 | 22.9 | 27.0 |
| मेड़ों पर | 35.7 | 27.5 | 31.0 |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) | 4.3 | 3.3 | 4.8 |

**तालिका 4 : बुआई विधियों में बाजरा तथा गेहूँ की उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर)**

| उपचार | बाजरा | | | गेहूँ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | समतल | मेड़ों पर | औसत | समतल | मेड़ों पर | औसत |
| **वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)** | | | | | | |
| अच्छा जल | 27.1 | 31.1 | 29.1 | 39.6 | 43.6 | 41.6 |
| 8 | 24.0 | 29.9 | 26.9 | 33.9 | 40.1 | 37.0 |
| 12 | 18.3 | 23.0 | 20.6 | 30.2 | 36.0 | 33.1 |
| औसत | 23.1 | 28.0 | – | 34.6 | 39.9 | – |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) वैद्युत चालकता | 3.1 | | | 2.7 | | |
| बुआई विधियां | 3.7 | | | 3.3 | | |

बाजरा–गेहूँ फसल चक्र पर किए गए प्रयोग में पाया गया कि लवणीय जल से सिंचाई में बाजरा की उपज में सार्थक रूप से अन्तर रहा। सबसे अधिक उपज अच्छे जल से सिंचाई में तथा सबसे कम 12 डेसी सीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता वाले जल में प्राप्त हुई। अच्छे जल की तुलना में 8 तथा 12 डेसी सीमन प्रति मीटर लवणीय जल से सिंचाई में क्रमशः 8 व 29 प्रतिशत कम उपज प्राप्त हुई। इसी प्रकार बुआई विधि में भी सार्थक अन्तर पाया गया। समतल बुआई की तुलना में मेड़ों पर बुआई करने से 18 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त हुई। बाजरा के बाद दूसरी फसल गेहूँ की उपज में अच्छे जल की तुलना में 8 तथा 12 डेसी सीमन प्रति मीटर वैद्युत चालकता वाले जल से सिंचाई में 11 तथा 20 प्रतिशत गिरावट दर्ज की गई। गेहूँ में बुआई विधियों से ज्ञात हुआ कि गेहूँ की मेड़ों पर समतल बुआई की तुलना में 13 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त हुई।

आगरा में किये गये प्रक्षेत्र प्रदर्शन के परिणामों से ज्ञात होता है कि कपास की पैदावार अच्छे जल की सिंचाई में सबसे अधिक प्राप्त होती है लेकिन दो वर्ष के औसत के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अच्छे जल की तुलना में 6 तथा 9 डेसी सीमन प्रति मीटर के सिंचाई जल द्वारा क्रमशः 10 तथा 41 प्रतिशत कम पैदावार प्राप्त होती है (तालिका 5)।

इसी प्रकार 6 की अपेक्षा 9 डेसी सीमन प्रति मीटर जल द्वारा सार्थक रूप से 35 प्रतिशत कम उपज प्राप्त हुई। बुआई विधियों में देखा गया कि मेड़ों पर कपास की बुआई में समतल बुआई से 20 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त हुई।

खारे पानी का प्रबंधन परियोजना के अंतर्गत राजा बलवंत सिंह कालेज, बिचपुरी, आगरा में बाजरा–गेहूँ फसल चक्र पर एक प्रक्षेत्र प्रदर्शन लगाया गया। प्रदर्शन से प्राप्त आंकडो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि बाजरा की उपज पर सिंचाई जल की लवणता का सार्थक प्रभाव पडा तथा सबसे अधिक उपज अच्छे जल द्वारा तथा 8 व 12 डेसी सीमन प्रति मीटर में क्रमशः 3 तथा 9 प्रतिशत उपज कम प्राप्त हुई।

**तालिका 5 : कपास की उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) पर लवणीय जल व बुआई विधियों का प्रभाव**

| | उपज | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उपचार | प्रथम वर्ष | | | द्वितीय वर्ष | | | औसत | | |
| | समतल | मेड़ों पर | औसत | समतल | मेड़ों पर | औसत | समतल | मेड़ों पर | औसत |
| **वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर)** | | | | | | | | | |
| अच्छा जल | 22.0 | 25.5 | 23.7 | 22.9 | 26.4 | 24.7 | 22.5 | 25.9 | 24.2 |
| 6 | 19.0 | 23.9 | 21.5 | 19.6 | 24.8 | 22.2 | 19.3 | 24.4 | 21.9 |
| 9 | 14.9 | 17.0 | 16.0 | 9.3 | 15.6 | 12.5 | 12.1 | 16.3 | 14.3 |
| औसत | 18.6 | 22.1 | – | 17.3 | 22.3 | – | 17.9 | 22.2 | – |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) वैद्युत चालकता | 3.1 | | | 3.3 | | | 2.9 | | |
| बुआई विधियां | 3.7 | | | 3.5 | | | 2.8 | | |

**तालिका 6 : बाजरा की तीन वर्ष की औसत उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) पर जल गुणवत्ता व बुआई विधियों का प्रभाव**

| उपचार | बुआई विधियां/सिंचाई : कुल वाष्पन अनुपात | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | समतल | मेड़ों पर | | | औसत |
| | 0.9 | 0.9 | 0.6 | 0.3 | |
| वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर) | | | | | |
| अच्छा जल | 26.0 | 27.9 | 27.3 | 27.0 | 27.4 |
| 8 | 24.5 | 27.1 | 26.5 | 26.0 | 26.6 |
| 12 | 23.1 | 25.5 | 24.8 | 24.8 | 25.0 |
| औसत | 24.5 | 26.8 | 26.2 | 26.0 | – |
| क्रांतिक अंतर (5 प्रतिशत) विधियां 0.2, समतल (ई.सी.) 1.2, मेड़ पर ई.सी. 0.8 | | | | | |

बुआई विधियों में सार्थक रूप से अन्तर पाया गया तथा इनका आपस में मूल्यांकन सिर्फ सिंचाई : कुल वाष्पन (आई.डब्लू./सी.पी.ई.) अनुपात 0.9 में ही किया गया। मेड़ों पर बुआई करने से समतल बुआई की अपेक्षा बाजरे की 9 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई (तालिका 6)।

बाजरा के बाद रबी में गेहूँ की बुआई की गई तथा इसमें तीनों उपचार प्रयोग में लाये गये। तीन वर्ष की औसत उपज में लवणता का सार्थक असर था तथा सबसे अधिक उपज अच्छे जल में तथा 8 व 12 डेसी सीमन प्रति मीटर के लवणीय जल से 12 तथा 25 प्रतिशत कम उपज प्राप्त हुई। इसी प्रकार सिंचाई : कुल वाष्पन अनुपात का भी सार्थक प्रभाव पाया गया तथा सबसे अधिक औसत पैदावार सिंचाई : कुल वाष्पन अनुपात 0.9 में तथा 0.6 तथा 0.3 अनुपात में क्रमशः 14 तथा 35 प्रतिशत कम पैदावार प्राप्त हुई। बुआई विधियों का भी उपज पर सार्थक प्रभाव पाया गया तथा मेड़ों पर गेहूँ की बुआई करने पर समतल बुआई की तुलना में 2 प्रतिशत अधिक पैदावार प्राप्त हुई (तालिका 7)।

क्रियान्वित अनुसंधान प्रयोग के अंतर्गत खारे पानी की परियोजना आगरा में गेहूँ की मेड़ों पर बुआई के दो वर्ष

**तालिका 7 : गेहूँ की तीन वर्ष की औसत उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) पर जल गुणवत्ता व बुआई विधियों का प्रभाव**

| उपचार | बुआई विधियां/सिंचाई : कुल वाष्पन अनुपात | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | समतल | मेड़ों पर | | | औसत |
| | 0.9 | 0.9 | 0.6 | 0.3 | |
| वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर) | | | | | |
| अच्छा जल | 39.4 | 40.3 | 33.9 | 27.1 | 33.8 |
| 8 | 34.9 | 35.5 | 30.8 | 23.2 | 29.8 |
| 12 | 30.5 | 30.8 | 26.4 | 18.5 | 25.2 |
| औसत | 34.9 | 35.5 | 30.4 | 22.9 | – |
| क्रांतिक अंतर (5 %) विधियां 0.4, समतल (ई.सी.) 2.0 मेड़ों पर ई.सी. 1.6; सिंचाई : कुल वाष्पन अनुपातः1.6 | | | | | |

प्रक्षेत्र प्रदर्शन गांव नगला हृदय जिला मथुरा में किसानों के खेतों पर लगाये गये। इनसे प्राप्त औसत आंकड़ों के आधार पर ज्ञात होता है कि समतल बुआई की अपेक्षा मेड़ों पर गेहूँ की बुआई की जाए तो प्रति हैक्टर पैदावार अधिक मिलती है। साथ ही सिंचाई का समय भी समतल की अपेक्षा मेड़ों पर बुआई करने में कम लगा। मेड़ों पर बुआई वाले खेतों में कटाई के बाद मृदा परीक्षण में वैद्युत चालकता भी कम पाई गई। (तालिका 8)

## निष्कर्ष

प्रायोगिक परिणामों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कृषि में प्रयुक्त होने वाले जल की गुणवत्ता में निरन्तर गिरावट होती जा रही है। भूमिगत जल की लगातार गिरावट तथा खारापन एक गंभीर समस्या बनती जा रही है इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए खारे पानी वाले क्षेत्रों में मेड़ों पर खेती करने की विधि को विभिन्न फसलों में अपनाना लाभदायक है। इस तकनीक से बीज व उर्वरक की बचत तो होती ही है साथ ही सिंचाई जल की भी 30 से 40 प्रतिशत तक बचत होती है तथा समतल बुआई की अपेक्षा प्रति हैक्टर पैदावार भी अधिक मिलती है।

## तालिका 8 : गेहूँ की दो वर्ष की औसत उपज (कुण्टल प्रति हैक्टर) पर बुआई विधियों का प्रभाव

| किसान का नाम | बुआई विधियाँ | उपज | | सिंचाई का समय (घंटे प्रति हैक्टर) | वैद्युत चालकता (डेसी सीमन प्रति मीटर) |
|---|---|---|---|---|---|
| | | दाना | भूसा | | |
| सुनहरी लाल | मेड़ों पर | 28.0 | 42.0 | 17.2 | 4.7 |
| | समतल | 27.0 | 40.0 | 24.1 | 5.5 |
| बलवीर सिंह | मेड़ों पर | 29.0 | 43.5 | 21.0 | 9.0 |
| | समतल | 28.5 | 42.7 | 28.5 | 9.6 |
| निहाल सिंह | मेड़ों पर | 30.0 | 45.0 | 24.4 | 9.5 |
| | समतल | 29.0 | 43.5 | 28.4 | 10.5 |
| नेत्र पाल | मेड़ों पर | 28.0 | 42.0 | 22.4 | 9.5 |
| | समतल | 26.5 | 39.7 | 26.1 | 10.1 |
| रघुवर दयाल | मेड़ों पर | 27.0 | 40.5 | 22.1 | 10.5 |
| | समतल | 26.0 | 39.0 | 28.5 | 10.7 |
| ओम प्रकाश | मेड़ों पर | 27.5 | 41.2 | 17.4 | 5.7 |
| | समतल | 25.5 | 38.1 | 24.1 | 6.0 |

**– समाप्त –**

जीवन का आनन्द गौरव, सम्मान एवं
स्वाभिमान के साथ जीने में है।

# शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों की लवणीय मृदा में ग्वारपाठा की खेती – एक लाभदायक विकल्प

एम॰एल॰ मीणा, धीरज सिंह, एम॰के॰ चौधरी एवं पी॰के॰ तोमर
कृषि विज्ञान केन्द्र (काजरी), पाली–मारवाड़ (राजस्थान)

राजस्थान में लगभग 10.62 लाख हैक्टर भूमि लवणता एवं क्षारीयता की समस्या से ग्रस्त है। इसमें से लगभग 6.43 लाख हैक्टर भूमि लवणीय है। इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन लगभग नगण्य है परन्तु इस प्रकार की भूमि में ग्वारपाठा की खेती की जा सकती है और इससे भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाने में भी सहायता होती है। ग्वारपाठा एक औषधीय पौधा है, जो स्वाद में हल्का कड़वा होता है। इसकी पत्ती काटने पर पीला एवं गन्धयुक्त रस निकलता है जिसे एलोइन कहते है। ग्वारपाठा में कड़वापन एलोइन के कारण ही होता है। इसका उपयोग सब्जी, चटनी, मुरब्बा, जैल, शर्बत, शैम्पू एवं कई प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों में किया जाता है। विभिन्न भाषाओं में इसे अलग–अलग नामों से जाना जाता है जैसे संस्कृत में घृतकुमारी व हिंदी में ग्वारपाठा कहते हैं। इसकी खेती लवणीय मृदा सुधार हेतु लाभकारी होती है।

**उपयोगी भाग :** पत्ती एवं पुष्प

**औषधीय उपयोग :** गठिया, सूजन, अल्सर, मधुमेह, पित्त विकार, जलने पर, यकृत एवं प्लीहा के बढ़ने एवं सौन्दर्य प्रसाधनों में।

**मुख्य घटक :** ग्वारपाठा के रस में लगभग 23 प्रकार के पोलीपेप्टाईडस पाये जाते हैं। इसका गाढ़ा रस गहरे भूरे रंग का होता है जो मुसव्वर के नाम से बाजार में मिलता है। इसमें पीले रंग तथा स्वाद में कड़वा बार्बेलॉइन (वीटावार्बेलाइन आइसोवार्बेलाइन), एलो एमोडीन एन्थ्रोन पाया जाता है। इसमें 6 तरह के एन्टीसेप्टिक घटक जैसे लुइओल, सेलीसीलिक अम्ल, यूरिया, नाईट्रोजन, सिनोमोनिक अम्ल, फिनोल्स एवं सल्फर के अलावा एन्टीइनफ्लेमेंट वसा एवं अम्ल जैसे कोलेस्टरॉल, केम्परस्टेराल, वीटासिटोस्टेरॉल आदि विशेष रूप से पाये जाते हैं।

**वानस्पतिक विवरण :** ग्वारपाठा एक तना रहित बहुवर्षीय शाकीय पौधा है। इसकी पत्ती दंतुआकार, भालाकार तथा मांसल होती है। सामान्यतया पत्ती की लम्बाई 25 से 70 सेंमी. तक होती है। मृदा एवं जलवायु के अनुसार कभी–कभी यह लम्बाई–चौड़ाई इससे भी अधिक हो सकती है। परिपक्व पत्तियों का रंग हल्का हरा या भूरा होता है। बुआई के दूसरे वर्ष में पौधे के मध्य में शाखाविहीन पुष्प दण्ड निकलता है, जिसकी लम्बाई लगभग 90–150 सेंमी. के मध्य होती है। इसके ऊपर चमकीले हल्के पीले या हल्के लाल रंग के पुष्प निकलते हैं।

**वितरण :** ग्वारपाठा विश्व के विभिन्न देशों जैसे भारत, इटली, यूरोप, अफ्रीका, जापान, उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, फिलीपीन्स, स्पेन, थाईलैण्ड, चीन एवं वेस्टइण्डीज आदि देशों में पाया जाता है। विश्व के कई देशों में इसकी व्यापारिक स्तर पर खेती की जा रही है। भारत के लगभग सभी भागों में यह पाया जाता है लेकिन राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश आदि राज्यों में मुख्य रूप से बहुलता में पाया जाता है।

**जलवायु :** यह शुष्क जलवायु का पौधा है। शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त समझी जाती है। इसके लिए कम पानी की आवश्यकता होती है। अधिक नम जलवायु इसके लिए उपयुक्त नहीं है।

**मृदाः** ग्वारपाठा को सिंचित एवं असिंचित दोनों प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। इसके लिए अधिक उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती है। उचित जलनिकास वाली लवणीय मृदा एवं बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है लेकिन ऐसी मृदा जिसमें सोडियम तथा कैल्शियम की मात्रा अधिक हो तथा जिसका

पी.एच. मान 8.5 तक हो उसमें भी ग्वारपाठा को उगाया जा सकता है। सिंचित भूमि में असिंचित भूमि की अपेक्षा उत्पादन अधिक होता है। पानी भराव वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है।

**खेत की तैयारी :** ग्वारपाठा खरीफ में बोया जाता है। अतः मानसून आने से पहले चयनित खेत की पहली गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें तथा एक या दो जुताईयाँ हेरो द्वारा करके पाटा लगाकर खेत को समतल करें। हेरो द्वारा अन्तिम जुताई के समय 10–15 टन प्रति हैक्टर की दर से अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद खेत में मिलायें। सिंचाई की सुविधा के अनुसार, 10–15 मीटर लम्बी तथा 3 मीटर चौड़ी क्यारियाँ तैयार करें।

**उन्नत किस्में :** भारत में अभी तक ग्वारपाठा की कोई उन्नत किस्म अनुमोदित नहीं की गई है लेकिन एन.बी.पी. जी.आर., नई दिल्ली द्वारा निम्न जीनोटाईप को उपयुक्त पाया गया है:

**अधिक एलोइन के लिए :**

आई.सी. 111271, आई.सी. 111280, आई.सी. 111267 एवं आई.सी. 11273

**अधिक जैल की मात्रा के लिए :**

आई.सी. 11267, आई.सी. 11266, आई.सी. 111230, आई.सी. 11272 एवं आई.सी. 11277

उपरोक्त किस्मों को मांग के अनुसार उगाया जा सकता है।

**खाद एवं उर्वरक :** ग्वारपाठा का उपयोग सीधा स्वास्थ्य से जुड़ा है अतः जहां तक सम्भव हो इसमें रासायनिक उर्वरकों एवं अन्य प्रकार के रसायनों का प्रयोग नहीं करें। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 10–15 टन प्रति हैक्टर की दर से सड़ी हुई गोबर खाद व कम्पोस्ट खाद खेत में मिलाएं। ध्यान रहे कि खाद अच्छी प्रकार से सड़ी होनी चाहिए अन्यथा दीमक लगने की संभावना रहती है।

**बुआई का समयः** ग्वारपाठा की बुआई मुख्यतः वर्षा ऋतु में (जुलाई–अगस्त) में की जाती है। अगर पानी की उपलब्धता है तो सर्दी के मौसम (नवम्बर–फरवरी) के अलावा पूरे वर्ष बुआई की जा सकती है।

**बुआई की विधिः** ग्वारपाठा की बुआई हमेशा कतारों में करें, पौधे से पौधे की दूरी 50–60 सेंमी. तथा कतार से कतार की दूरी 60 सेंमी. रखें। सकर्स की बुआई 15 सेंमी. गहरे गड्ढे में करें। अच्छी वृद्धि के लिए लकड़ी या उपले (कन्डे) की थोड़ी राख सकर्स लगाने से पहले गड्ढे में डालें। बुआई के बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें।

**प्रवर्धन :** ग्वारपाठा का प्रवर्धन पौध सकर्स के द्वारा किया जाता है। बुआई के लिए 3–4 माह पुराने ऐसे सकर्स का चुनाव करें जिनमें कम से कम 4–5 पत्तियां हों तथा सकर्स की लम्बाई 20–25 सेंमी. के मध्य हो।

**सकर्स की मात्रा :** अच्छी उपज एवं उत्तम शस्य क्रियाओं के लिए ग्वारपाठा की बुआई हमेशा कतारों में करें। इस प्रकार प्रति हैक्टर 28000–34000 सकर्स की आवश्यकता होगी।

**सिंचाई :** जैसा कि प्रारम्भ में ही बताया जा चुका है कि इसकी खेती सिंचित एवं असिंचित दोनों ही क्षेत्रों में की जा सकती है, लेकिन सिंचित क्षेत्रों में असिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा दो गुणा से भी अधिक उपज मिलती है। अगर बुआई के बाद वर्षा होने की संभावना नहीं है तो बुआई के तुरन्त बाद सिंचाई करें, अगर पानी की उपलब्धता है तो वर्ष में 4–6 सिंचाईयां आवश्यकतानुसार करें। पत्तियों की प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करे।

**निराई–गुड़ाई :** ग्वारपाठा की बुआई मुख्यतः वर्षा ऋतु में की जाती है। अतः खरतपवार काफी मात्रा में उगते हैं, खेत को हमेशा खरपतवार रहित रखें। प्रथम निराई–गुड़ाई, बुआई के 25–30 दिन बाद करें। आवश्यकतानुसार वर्ष में 2–3 बार निराई तथा हल्की गुड़ाई खुरपी या कुदाली से करें। बीमार, अनुत्पादक पौधे, सूखे पुष्प एवं पुष्पदण्डों को लगातार खेत से निकालते रहें।

**अन्तः फसल :** ग्वारपाठा की फसल की बुआई कतारों में करते हैं। प्रथम वर्ष में 40 प्रतिशत से भी अधिक भूमि अनुपयोगी रहती है, इसमें ग्वारपाठा की दो कतारों के बीच में निम्न फसलों जैसे तिल, ग्वार, मूंगफली, धनिया, सौंफ आदि को कतार में उगाकर अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं। दलहनी फसलों से भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ती है। दूसरे वर्ष में कोई अन्तः फसल नहीं लेनी चाहिए।

*लवणीय मृदा में ग्वारपाठा की खेती*

*ग्वारपाठा की पौधशाला*

**कीट एवं बीमारियां :** ग्वारपाठा में कीट एवं बीमारियों का प्रकोप कम ही होता है। कभी–कभी दीमक का प्रकोप पाया जाता है। इसकी रोकथाम के लिए हल्की सिंचाई करें, अच्छी सड़ी हुई खाद का ही उपयोग करें तथा नीम की खली 5–6 कुण्टल प्रति हैक्टर की दर से क्यारियां बनाते समय खेत में मिलाएं।

**कटाई :** बुआई के एक वर्ष बाद हर 3–4 माह में प्रत्येक पौधे की पूर्ण परिपक्व (पत्तियों का रंग हल्का हरा या भूरा) होने पर पत्तियों को तेज धारदार चाकू या हँसिए से काट लें। ऊपर की 4–5 पत्तियों को छोड़कर शेष पत्तियों की कटाई करें।

**पत्तियों का संग्रह :** कटाई के बाद पत्तियों को इस प्रकार रखें कि एक पत्ती से दूसरी पत्ती को नुकसान न पहुंचे अन्यथा पत्तियों से एलोइन बाहर आकर काला हो जायेगा जिससे इसकी गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

**उपज :** असिंचित क्षेत्र में 150–200 कुण्टल प्रति हैक्टर प्रति वर्ष ताजी पत्तियां प्राप्त हो सकती है जबकि सिंचित क्षेत्र में 300–350 कुण्टल प्रति हैक्टर प्रति वर्ष की दर से यह पैदावार ली जा सकती है।

**विपणन :** हमारे देश में ग्वारपाठा की बिक्री हेतु अभी संगठित बाजार उपलब्ध नहीं है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसके विपणन में काफी रुचि देखी गई है फिर भी विपणन की समुचित व्यवस्था नहीं है। विपणन की समुचित व्यवस्था होने पर ही इसकी खेती करें।

**– समाप्त –**

अपने कार्यों में व्यवस्था, नियमितता, सुन्दरता, मनोयोग तथा जिम्मेदारी का ध्यान रखें।

# सगंध फसल पुदीना की लाभकारी खेती

मसव्वर अली[1], राजेश कुमार[2], भगवत सिह खैरावत[2], बाबू लाल मीणा[2] एवं सुखदेव कुमार[1]

[1]गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल (हरियाणा)

[2]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

पुदीना (पिपरमिन्ट) ठण्डी जलवायु का पौधा है। इसकी उत्पत्ति यूरोप में है परन्तु इसकी खेती एशिया, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, इंग्लैण्ड, ब्राजील, फ्राँस, इटली, चीन और भारत में भी होती है। भारतवर्ष में अधिकत्तर इसकी खेती उत्तर प्रदेश में होती है। विश्वभर में पिपरमिन्ट तेल का उत्पादन 8000 टन प्रति वर्ष होता है जिसमें से भारत 160–210 टन तेल का उत्पादन करता है।

मुख्य रूप से पिपरमिन्ट के तेल का उपयोग खुशबू (सुगन्ध) के लिए किया जाता है। इसका उपयोग दंत मंजन, चिविंगम, माउथवाश, टॉफी, खाँसी की दवा, सौन्दर्य प्रसाधनों, पान मसाला, दाढ़ी बनाने के बाद का लोशन आदि में बहुतायत रूप से प्रयोग किया जाता है।

## उत्पत्ति एवं बढ़वार

पिपरमिन्ट शीतोष्ण जलवायु का पौधा है तथा पौध को लगाते समय कम तापमान की आवश्यकता होती है परन्तु इसकी अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए मध्यम तापक्रम (20–25°) की आवश्यकता होती है।

## जलवायु

फसल की कटाई के समय शुष्क एवं गर्म मौसम और तापमान साफ रहने से इसमें तेल की मात्रा में बढ़ोतरी होती है। इस फसल के लिए औसत वार्षिक वर्षा 800–1000 मि.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए, इसलिए इसकी व्यावसायिक खेती के लिए उत्तर भारत के पहाडों की तलहटी वाले क्षेत्र अत्यन्त उपयुक्त है। पिपरमिन्ट के तेल में मुख्य रूप से मेन्थॉल, मेन्थो–प्यूरॉन, मेन्थाइल एसीटेट इत्यादि पाये जाते हैं जिनके कारण ही इसकी सुगन्ध मनमोहक व मीठी होती है। पिपरमिन्ट की कई किस्मों का उत्पादन मेन्थो–प्यूरॉन के लिए भी किया जाता है।

## मृदा

पिपरमिन्ट की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए समुचित जलनिकास वाली बलुई दोमट से चिकनी दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है। भूमि का पीएच मान 6.5–7.5 होने पर उपज अच्छी प्राप्त होती है। मृदा में जिंक धारण एवं उपलब्धता क्षमता अच्छी होनी चाहिए।

## प्रजातियाँ

केन्द्रीय औषधीय एवं सुगंधीय पादप संस्थान, लखनऊ द्वारा पिपरमिन्ट की उन्नतशील किस्में कुकरैल, तुषार, प्रांजल, सिमइन्डस, सिममधुरस आदि विकसित की गयी है जिनमें तेल की मात्रा 0.03–0.6 प्रतिशत होती है।

## बुआई

पिपरमिन्ट की बुआई का समय दिसम्बर एवं जनवरी माह है। इस समय फसल की बुआई करने से फसल की वृद्धि अच्छी होती है। पिपरमिन्ट की एक हैक्टर रोपाई के लिए 300–350 किलोग्राम रनर की आवश्यकता होती है। इसकी रोपाई के लिए कतार से कतार की दूरी 45 सेंमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 5 सेंमी. रखी जाती है।

## खेत की तैयारी

पौध की रोपाई के लिए खेत को भली–भाँति तैयार करने के बाद 45 सेंमी. की दूरी पर 8–10 सेंमी. गहरी नालियाँ बनाते हैं। इन नालियों में पिपरमिन्ट की पौध को लम्बाई में तोड़कर इस प्रकार बिछाते हैं कि उसका आगे तथा पीछे का भाग भूमि की सतह के ऊपर दिखाई दे तथा शेष भाग मिट्टी में दबा दिया जाता है। रोपाई के तुरन्त बाद खेत में पानी लगा देना चाहिए।

## खाद

खेत की अन्तिम जुताई के समय 10–12 टन गोबर की तैयार खाद अच्छी तरह से भूमि में मिला देनी चाहिए। फसल की अच्छी पैदावार के लिए (दो कटाई) 120–150 कि॰ग्रा॰ नाइट्रोजन, 50–60 कि॰ग्रा॰ फॉस्फोरस तथा 40–50 कि॰ग्रा॰ पोटाश प्रति हैक्टर की दर से देना चाहिए। फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई से

पहले खेत में डालकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए तथा नाइट्रोजन का तीसरा भाग कल्ले निकलने के समय तथा शेष दो–तिहाई भाग का प्रयोग समान मात्रा में खड़ी फसल में दो बार 20–25 दिन के अंतराल पर छिड़काव विधि द्वारा करना चाहिए।

## सिंचाई

पुदीना की बुआई अगर दोमट मिट्टी में की गई है तो अधिक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन यदि चिकनी दोमट मिट्टी में बुआई की गई है तो सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। औसतन फसल की दो कटाई लेने पर 10–12 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। खेत में समुचित जल निकास का प्रबन्ध जरुर होना चाहिए जिससे जल भराव की स्थिति उत्पन्न नहीं हो।

## खरपतवार नियंत्रण एवं निराई गुडाई

पुदीना के उत्पादन में खरपतवार एक बहुत बड़ी समस्या है। खरपतवारों से शाक एवं तेल दोनों की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। समुचित प्रबंधन के अभाव में खरपतवारों से फसल की उपज पर 60–80 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। बुआई से 15–45 दिन तक का समय खरपतवार नियंत्रण के लिए काफी महत्वपूर्ण होता है। इस दौरान खेत की निराई नियमित रूप से करते रहना चाहिए। इसके बाद एक से दो गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। रोपाई के बाद जब खेत में चलने पर नमी के कारण पैर न धंसे तो रासायनिक खरपतवार नाशी पेन्डामिथिलीन (1 कि॰ग्रा॰ सक्रिय तत्व) का प्रयोग किया जा सकता है।

## कीट एवं रोग प्रबंधन

पुदीना फसल को प्रायः कीट व रोग हानि पहुँचाते हैं। अतः इनका समयानुसार नियंत्रण करना बहुत ही आवश्यक होता है। अगर इनका समय पर नियंत्रण नहीं किया जाए तो फसल को अधिक हानि होने का अंदेशा रहता है। यह कीट भूमि के अन्दर रहते हैं और पौधों की जड़ों को काटते रहते हैं। जिससे सम्पूर्ण पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है। दीमक अगर अधिक मात्रा में नुकसान पहुँचा रही हो तो एक लीटर क्लोरोपाईरीफास को प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के समय पानी के साथ खेत में डालना चाहिए।

गिडार (व्हाईट गरब) नामक कीट भी पिपरमिन्ट की फसल के लिए बहुत ही घातक है। यह पौधों की पत्तियों को खाता है जिससे पत्तियाँ समाप्त होती जाती है तथा प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इस कीट के नियंत्रण के लिए डाईमेक्रान या थायोडान 0.15 से 0.20 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करना चाहिए। पत्तियों का धब्बा रोग पौधे की निचली पत्तियों पर अधिक आता है। इस रोग में पत्तियों पर आँख के आकार जैसे काले धब्बे बनते हैं और फिर यह धीरे–धीरे बड़े हो जाते हैं और पूरी पत्ती काली पड़ जाती है। इस रोग की रोकथान के लिए मेंकोजेब का 1 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

## कटाई

पिपरमिन्ट की पहली कटाई रोपाई के 100–120 दिन पर कर लेनी चाहिए तथा तदुपरांत दूसरी कटाई 60–70 दिन बाद करनी चाहिए। पिपरमिन्ट की फसल से तेल प्राप्त करने के लिए उसका आसवन करना पड़ता है। फसल की कटाई के बाद ताजे शाक को खेत में फैलाकर 1–2 दिन के लिए पडे रहने देना चाहिए। ऐसा करने से तेल का प्रतिशत बढ़ जाता है तथा आसवन भट्ठी में आग के लिए ईंधन की बचत हो जाती है। इस शाक को उठाकर आसवन संयंत्र की टंकी में डाल देना चाहिए। 2–3 घंटे में तेल का आसवन हो जाता है। तेल के अन्दर का पानी निकालकर एल्यूमिनियम की बोतल या ड्रम में रख देने से तेल की गुणवत्ता बनी रहती है। पिपरमिन्ट की फसल की कटाई अगर सही समय पर की जाती है तो सम्पूर्ण फसल से दोनो कटाईयों में औसतन 100–1025 कि॰ग्रा॰ तेल प्रति हैक्टर प्राप्त हो जाता है।

**– समाप्त –**

सज्जनता और मधुर व्यवहार मनुष्यता की पहली शर्त है।

# अनुपजाऊ शुष्क लवणीय क्षेत्रों के लिए लाभकारी फसल – मेहंदी

धीरज सिंह, एम॰के॰ चौधरी, पी॰के॰ तोमर एवं एम॰एल॰ मीणा

कृषि विज्ञान केन्द्र, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) पाली–मारवाड़ (राजस्थान)

मेहंदी एक सूखारोधी बहुवर्षीय झाड़ीनुमा पौधा है। राजस्थान में इसकी खेती, पत्तियों में पाये जाने वाले रंग (1 से 2.5 प्रतिशत लासोन) के लिये की जाती है। इसका उपयोग केश रंगने और पारंपरिक साज–सज्जा में होता है। इसके अलावा फूलों से प्राप्त सुगन्धित तेल (इत्र) और पौधे के विभिन्न औषधीय गुण सुप्रसिद्ध हैं। स्त्रियां इसकी पत्तियां पीसकर हाथ–पांव में लाल रंग रंगने के काम में उपयोग करती हैं। इसके पुष्प, हरिताभ, श्वेत, गुच्छों से सुगन्धित शाखाग्र में खिलते हैं तथा फल गोल एवं कई बीज वाले होते हैं। मेहंदी के पौधे सम्पूर्ण भारत में पाए जाते हैं। कई जगह इनको खेतों में बगीचों की सीमा पर भी लगाया जाता है तथा बाड़ हेतु भी प्रयुक्त किया जाता है। इसके फूलों की अत्यधिक मीठी सुगंध मन को अत्यंत भाती हैं।

राजस्थान हमारे देश में मेहंदी पत्ती का सबसे प्रमुख उत्पादक प्रदेश है। राजस्थान में पाली जिला विशेषकर सोजत और मारवाड़ जंक्शन क्षेत्र में मेहंदी मुख्य फसल के रूप में उगाई जाती है इसीलिए यह क्षेत्र मेहंदी उत्पादन का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। जिले की 40000 हैक्टर क्षेत्रफल में फैली व्यावसायिक खेती से किसानों, व्यापारियों और इससे जुड़े हुए उद्योगों को प्रतिवर्ष 40 करोड रुपये से अधिक की आमदनी होती है। इसी कारण सोजत पूरे विश्व में मेहंदी उत्पादन और विपणन की प्रमुख मंडी है। आज सोजत क्षेत्र में मेहंदी का पाउडर बनाने वाले तथा मेहंदी की सफाई करने वाले लगभग 50–60 कारखाने लगे हुए हैं। इन कारखानों के मालिक अपना उत्पाद तैयार कर पूरे विश्व के साथ–साथ भारत के दूर–दराज के गावों, कस्बों और शहरों में भी आपूर्ति करते हैं। वर्तमान में सोजत की मेहंदी का कई ब्रांड नामों से विपणन हो रहा है। 125 से अधिक ब्रांड नामों से बिकने वाली मेहंदी के कारण ही सोजत मंडी का नाम पश्चिम राजस्थान में मेहंदी मंडी के नाम से प्रसिद्ध है जहाँ मेहंदी बेचने के लिए दूर गांवों से आने वाले किसानों के लिए सभी तरह की उचित व्यवस्था है।

*शुष्क क्षेत्र में लहलहाती मेहंदी की फसल*

## जलवायु और भूमि

यद्यपि मेहंदी के पौधे अनेक प्रकार की मृदा व जलवायु में उगाये जा सकते है लेकिन अच्छी गुणवत्ता की पैदावार के लिये सामान्य बलुई दोमट भूमि एवं ऊष्ण और शुष्क जलवायु उत्तम है। मेहंदी के पुनर्विकास और अच्छी वृद्धि के लिये तेज धूप, शुष्क वातावरण और गर्मी जरूरी है। मेहंदी कम पानी तथा लवणीय व क्षारीय भूमि में भी बड़ी आसानी से वृद्धि करती है। इन्ही कारणों से पश्चिमी राजस्थान में सीमान्त शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्र मेहंदी उत्पादन के लिये श्रेष्ठ साबित हुए हैं। इसकी खेती की विधि सरल है तथा समिति संसाधनों पर निर्भर करती है।

## खेत की तैयारी

मेहंदी बहुवर्षीय फसल है जो एक बार लगाने पर सालों तक (100 साल) उत्पादन देती रहती है। अतः जिस खेत में मेहंदी लगानी होती है उस खेत को पहले गर्मी में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें जिससे भूमि से लगने वाले कीटाणु नष्ट हो जाएँ। मानसून की पहली बरसात के साथ खेत में 2–3 जुताई कर पाटा लगाकर खेत को तैयार करें।

## पौधशाला

मेहंदी फसल की शुरूआत पौधरोपण से होती है। एक हैक्टर में पौधरोपण के लिये 1.5 मीटर गुणा 10 मीटर

की 8–10 क्यारियाँ तैयार की जाती है। क्यारियों में 40–50 सेंमी. गहरी बलुई मिट्टी होनी चाहिये तथा 8–10 टन प्रति हैक्टर की दर से सडा हुआ खाद या कम्पोस्ट डालना चाहिए। दीमक नियंत्रण के लिये मिथाइल पेराथियोन 10 प्रतिशत चूर्ण मिट्टी में मिलाना चाहिये। मेहंदी का बीज बहुत छोटा होता है अतः 5–6 कि॰ग्रा॰ बीज उपचारित कर क्यारियों में समान दर से बोना चाहिये।

## बीज उपचार

हर दिन ताजा पानी प्रयोग करते हुए बीज को 10–15 दिन तक लगातार पानी में भिगोकर रखा जाता है, समय की बचत के लिये 3 प्रतिशत नमक के घोल में एक दिन भिगोकर एक और दिन साधारण पानी में रखकर धो लेना पडता है।

## बुआई का समय

फरवरी से मार्च के दौरान बुआई कर देनी चाहिए।

## बुआई

उपचारित बीज की मात्रा के बराबर रेत मिलाकर बीज को क्यारियों में छिडक कर बुआई करते हैं तत्पश्चात् हल्का झाडू फेरकर व सडा हुआ गोबर ऊपर से छिडक कर बीज को ढक दिया जाता है।

## सिंचाई

10 से 15 दिन में बीज का अंकुरण पूरा होने तक प्रतिदिन सिंचाई की आवश्यकता होती है। बाद में हर दूसरे दिन या आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिये।

## निराई–गुडाई

एक बार बुआई के 20–30 दिन बाद तथा तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार समय–समय पर हल्की निराई–गुडाई करते हैं। पौधशाला में पौधे 3.5 से 4 माह की अवधि में 30 से 45 सेंमी. की ऊँचाई प्राप्त कर लेते हैं और खेत में स्थानान्तरित करने योग्य हो जाते हैं।

## रोपाई

रोपाई के लिए खेत में पहले हल, तवेदार (हैरो) और कल्टीवेटर चला कर मिट्टी भुरभुरी कर ली जाती है दीमक नियंत्रण हेतु खेत में 25 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर मिथाइल पेराथियोन या क्लोरपाइरीफॉस डस्ट का छिड़काव तथा उत्पादकता व जल संग्रहण बढाने के लिये 5 टन प्रति हैक्टर कम्पोस्ट खाद डालनी चाहिये। पौधों की रोपाई जुलाई–अगस्त में बरसात के बाद जल्दी की जाती है। पौधा शाला में उपलब्ध पौध (जड से उखाडे पौधे) के अधिकतम तना व जड को काट कर छोटा करके खेत में स्थानान्तरित करते है। खेत में रोपाई 45 गुणा 30 सेंमी. की दूरी पर खूंटी से 1.5 से 2.0 सेंमी. गहरा गड्ढा करके की जाती है। क्लोरपाइरीफॉस 35 ई.सी. घोल में जड़ों को गीला करके लगाने से दीमक से अतिरिक्त बचाव होता है। जड़ को सूखने से रोकने के लिए आस–पास की मिट्टी को अच्छी तरह दबाना अति महत्वपूर्ण है। रोपण कार्य पूर्ण होने के बाद एक दो बरसात होना जरूरी होती है ताकि पौध खेत में सफलतापूर्वक स्थापित हो सके। रोपे गये पौधों के उचित विकास के लिये 40 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से नाइट्रोजन पौधरोपण के समय देनी होती है।

## सिंचाई

सामान्यतः मेहंदी की खेती बरसात पर आधारित खरीफ फसल के रूप में लेते हैं। सफल रोपण के बाद दो या तीन अच्छी वर्षा मेहंदी पत्ती उत्पादन के लिए पर्याप्त है। लेकिन प्रथम वर्ष में पौधरोपण के बाद वर्षा नहीं होने की स्थिति में मेहंदी की सफल स्थापना के लिये एक सिंचाई की आवश्यकता रहती है। तत्पश्चात् उत्पादन बढाने या अत्यधिक सूखे से फसल को बचाने के लिये सिंचाई करना एक वैकल्पिक जरूरत है।

## निराई–गुड़ाई

खरपतवार नियन्त्रण और नमी संरक्षण के लिये निराई–गुडाई जरूरी है। प्रथम वर्ष कुदाली से और बाद के वर्षों में हल चलाकर निराई–गुड़ाई कर सकते हैं। मेहंदी फसल में एक से दो गुडाई 30–50 दिन के अन्तराल पर की जाती है। पौधों की उचित बढवार के लिये मेहंदी के स्थापित खेतों या बागवानों में हर वर्ष प्रथम निराई–गुडाई के समय 40 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर नाइट्रोजन उर्वरक पौधों की कतारों के दोनो तरफ डालनी चाहिए। अच्छी बरसात की स्थिति में दूसरी निराई–गुडाई के समय इसे दोहराये। मेहंदी की फसल में उचित दूरी रखकर दलहनी फसलों का समावेश भी किया जा सकता है

*मेहंदी की फसल की कतार में गुड़ाई*

## कीट नियन्त्रण

मेहंदी का मुख्य शत्रु दीमक है। इसके नियंत्रण के लिए 25 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर की दर से मिथाइल पेराथियोन या क्लोरपाइरीफॉस डस्ट खेत में निराई–गुडाई के समय डालनी चाहिये।

## कटाई

मेहंदी की फसल को साल में एक या दो बार काटते हैं। मुख्य फसल मानसून के बाद तेज गर्मी से पत्तियां पकने पर अक्टूबर–नवम्बर में काटी जाती है। कटाई का समय उत्पादन की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। शाखाओं के निचले भाग में पत्तियां पूरी तरह पीली पडने पर और स्वतः झडने से पहले ही मेहंदी की फसल काट लेनी चाहिये, क्योंकि पत्तियों का आधा उत्पादन पौधों के निचले एक चौथाई भाग से मिलता है। पत्तियों से भरी शाखाओं को जमीन के नजदीक से काट कर सूखे खेत या अन्य स्थान पर खुले में सूखने के लिये तीन–चार दिन तक रख दिया जाता है। सुखाते समय फसल बरसात के पानी से भीगनी नहीं चाहिये। एक भी बौछार कटी हुई मेहंदी की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। इसलिये कटाई के समय मौसम साफ और खुला होना आवश्यक है। सूखने के बाद पत्तियों को झाड कर इकट्ठा किया जाता है और बोरियों में भरकर सूखे स्थान पर भण्डारण किया जाता है।

## उपज

बारानी फसल से औसतन 1000 से 1500 कि॰ग्रा॰ सूखी पत्ती एक हैक्टर से प्राप्त होती है। स्थापना के प्रथम तीन वर्ष तक पैदावार कम (200 से 600 कि॰ग्रा॰ प्रति हैक्टर) होती है। मेहंदी बागान सामान्यतः 20 से 30 साल तक उपजाऊ और लाभप्रद रहता है। इस अंतराल के बाद दीमक से इतने पौधे नष्ट हो जाते हैं कि लाभ के लिए किसान को पुनः नई फसल लगानी पड सकती है।

*मेहंदी में कटाई उपरांत क्रियाएँ*

## आर्थिक लाभ

मेहंदी की खेती में मुख्य लागत प्रथम वर्ष लगभग 15000 रुपये प्रति हैक्टर आती है, जिसमें 15 प्रतिशत खर्च जुताई, 55 प्रतिशत मजदूरी और 30 प्रतिशत पौध खरीदने पर होता है। स्वयं पौध की नर्सरी उगाने से यह खर्च और कम किया जा सकता है। बाद के वर्षों में इसका आधा व्यय रख–रखाव, कटाई, पत्ती झडाई इत्यादि पर होता है। मेहंदी की खेती से कुल आमदनी व लाभ सूखी पत्ती की उपज, गुणवत्ता और बाजार (मण्डी) में आवक पर निर्भर करती है। मण्डी में सूखी पत्ती औसतन 20 रुपये प्रति कि॰ग्रा॰ की दर से बिकती है। एक अनुमान के अनुसार 750 कि॰ग्रा॰ उपज से लगभग 6000 रुपये प्रति हैक्टर शुद्ध लाभ होता है। स्थापना के प्रथम तीन वर्षों में कम आर्थिक लाभ मिलता है परन्तु बाद में अच्छा उत्पादन व भाव मिलने पर शुद्ध लाभ 2 से 3 गुणा बढ़ सकता है।

हर घर में कार्य में आने के कारण इसके विपणन में आसानी रहती है जिससे उत्पादन लागत मिल जाती है। बहुवर्षीय फसल होने के कारण प्रति वर्ष उत्पादन की निश्चितता तथा बार–बार नई फसल लगाने के झंझट से मुक्ति रहती है तथा बाढ़, सुखा आदि आपदाओं का विशेष असर नहीं होता है। यह फसल उगाकर खाली पडी लवणीय व बारानी भूमि का सदुपयोग किया जा सकता है। मेहंदी की खेती शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों मे मृदा के जल संरक्षण में लाभकारी रहती है। इसके उत्पादन में रासायनिक एवं कीटनाशक दवाओं की आवश्यकता नहीं होती है जिससे उत्पादन लागत कम आती है।

**– समाप्त –**

ज्ञान की सार्थकता तभी है जब वह आचरण में आए।

# शुष्क लवणीय व क्षारीय मृदा क्षेत्रों के लिए वरदान : कुमट

एम॰के॰ चौधरी, धीरज सिंह, एम॰एल॰ मीणा एवं पी॰के॰ तोमर
कृषि विज्ञान केन्द्र (काजरी), पाली–मारवाड़ (राजस्थान)

कुमट शुष्क क्षेत्र में पाया जाने वाला एक जंगली पौधा है जो समूद्र तल से 100 से 1700 मीटर की ऊँचाई 4° से लेकर अधिकतम 48° तक वार्षिक तापमान तथा 300–400 मि.मी. औसत वर्षा वाले क्षेत्रों में प्राकृतिक रुप से उगता है या आसानी से उगाया जा सकता है। यह लेग्यूमिनेसी कुल का सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम *अकेसिया सेनेगल* है जिसकी उच्च गुणवत्ता वाले गोंद उत्पादन में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। कुमट क्षारीय व लवणीय भूमि के साथ सभी प्रकार की मृदाओं में आसानी से उगाया जा सकता है। यह वृक्ष प्राकृतिक रूप से राजस्थान विशेषकर पश्चिमी राजस्थान में मुख्य रूप से जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, जालोर, पाली, झुंझुनूं, चुरू तथा सीकर जिलों में पाया जाता है।

यह पारंपरिक कृषि वानिकी प्रणाली का प्रमुख घटक है जिसमें कुमट के पेड अधिकतर समूह में पाये जाते हैं। आमतौर पर जलवायु एवं भूमि की संरचना पर प्रति हैक्टर 15–20 पेड़ पाये जाते हैं। राजस्थान के अलावा दक्षिण–पूर्वी पंजाब, मध्य प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, झारखण्ड़, महाराष्ट, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, उडीसा तथा छतीसगढ के आदिवासी और वन क्षेत्रों में भी इस प्रजाति के पेड़ पाये जाते हैं। कुमट गोंद के अलावा सस्यवानिकी, ईंधन, मृदा उर्वरता बनाये रखने, मृदा कटाव रोकने व जलाऊ लकडी के साथ चारे का भी काम करता है।

*फली से लदा कुमट का वृक्ष*

कुमट सामान्यतया प्राकृतिक रुप से उगता है जिससे गोंद एकत्रित किया जाता है।

कुमट का पेड़ 4–8 मीटर तक ऊँचा होता है। कुमट का तना हल्का पीला या थोडा भूरा रंग लिये होता है। पेड की छाल खुरदरी या चिकने कागज के समान होती है जिसको आसानी से पेड से छीला नहीं जा सकता है। कुमट के पेड़ के तने पर कई शाखाएं फैली होती हैं। पेड की शाखाओं में कई कांटे जोड़े में लगे होते हैं। कांटे बहुत ही खतरनाक होते हैं। एक जोडे के बीच में तीसरा कांटा हुक की तरह मुड़ा हुआ होता है।

कुमट के फूल सामान्यतया अगस्त से दिसम्बर माह में आते हैं। फलियां सीधी एवं कुछ मुड़ी हुई भूरे या पीले रंग की होती है जोकि पकने पर सहज रुप से खुलने वाली होती हैं। फली 8–12 सेंमी. लम्बी तथा 1.3–3.4 सेंमी. चौड़ी होती है तथा एक फली में 6–10 बीज पाये जाते हैं। पत्तों में 10–13 प्रतिशत एवं फली में 15 प्रतिशत सुपाच्य प्रोटीन होता है।

जो किसान कुमट को खेत में नहीं लगाना चाहते ऐसे किसान कुमट के पेड खेत की मेड पर अथवा ऐसी जमीन जो लाभदायक खेती के लिए उपयुक्त नहीं हैं में कुमट को लगाकर उचित लाभ कमा सकते हैं।

## पौध की तैयारी

कुमट के स्वस्थ पौधों के लिए अच्छी गुणवता वाले बीजों का चयन करना चाहिये। अच्छी गुणवत्ता का तात्पर्य यह है कि बीज में अकुरण के पश्चात् वानस्पतिक वृद्धि व बढवार अच्छी हो। शाखाये संख्या में ठीक व बढोतरी उचित हो जिससे कुमट में फली/बीज का उत्पादन अच्छा हो सके। कुमट की नर्सरी तैयार करने के लिये अच्छी गुणवत्ता वाले बीज केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान क्षेत्र (काजरी) जोधपुर या शुष्क क्षेत्र वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर अथवा अन्य किसी वन व सरकारी संस्थान या विभाग से प्राप्त किये जा सकते हैं।

कुमट के पौधे तैयार करने या कुमट की सीधी बुआई के लिये कुमट के पेड़ पर फलियां सूखने पर फलियों से प्राप्त ताजे बीजों को काम में ले सकते हैं। ताजे बीजों को बोने के लिये उपचार की जरूरत नहीं पडती है। यदि बीज पुराना है या पिछले साल के एकत्रित बीजों को बोने से पूर्व 12– 24 घंटे तक पानी में डुबोने के बाद बुआई करें जिससे अंकुरण अच्छा होगा। बहुत अधिक परिपक्व बीजों की प्रसुप्ति तोड़ने के लिये 3–15 मिनट तक सांद्र सल्फुरिक अम्ल से उपचारित करे अथवा बीजों को 5 सैकंड के लिये उबलते पानी में डालकर उपचारित करें इससे बीजों का अकुरण अच्छा होता है।

कुमट के पौधे तैयार करने के लिये पॉलिथीन की थैलियों में पौध तैयार करते हैं। नर्सरी में पौधे तैयार करने के लिये प्रति थैली 2–4 बीज बोये जाते हैं तथा थैलियों से समय–समय पर खरपतवार आदि निकालते रहने से पौधों की बढवार ठीक होती है। नर्सरी में मौसम के अनुरूप आवश्यकतानुसार पानी देते रहना चाहिये ताकि जून–जुलाई तक पहली वर्षा तक पौध खेत में लगाने लायक हो जाये। थैलियों मे यदि ज्यादा पौधे उग जाये तो छोटे कमजोर पौधों को निकाल कर प्रति थैली एक स्वस्थ पौधा रखना चाहिये ताकि नर्सरी में उसकी बढवार अच्छी हो सके। अगर वर्षा ठीक हो एवं किसान चाहे तो कुमट के बीजों को सीधे खेत में भी लगाया जा सकता हैं। खेत में सीधी बुआई के लिये 30 सेंमी. लम्बा 30 सेंमी. चौडा तथा 30 सेंमी. गहरा गड्ढा खोदतें हैं तथा तैयार गड्ढे में 5–8 बीजों को उचित गहराई पर बुआई करें। बुआई के बाद लम्बे समय तक वर्षा नहीं होने की स्थिति में पानी देने की व्यवस्था करनी चाहिये।

कुमट के पेड़ो की बढवार शुरूआत में धीमी गति से होती है अतः अच्छी बढवार के लिये पेड़ो को हर सप्ताह या 15 दिन में एक बार पानी अवश्य देना चाहिये। दो–तीन वर्षों तक पौधों की अच्छी निराई–गुडाई करते रहें तथा पशुओं से विशेष रखवाली की व्यवस्था करे क्योंकि बढते पेड़ को नुकसान से पेड की बढवार रूक जाती है।

नर्सरी में तैयार पौध को खेत में लगाने के लिये जिस खेत में कुमट लगाने हो वहां 60 गुणा 60 गुणा 60 सेंमी. आकार के गड्ढे खोदते हैं फिर तैयार गड्ढो में कुमट की पौध लगाकर सिंचाई करें ताकि पौधों का जमाव ठीक हो सके।

जो किसान खेती योग्य भूमि में कुमट का वृक्षारोपण करना चाहते हैं वे खेती योग्य भूमि के तैयार खेत में 10 गुणा 10 मीटर की दूरी पर गड्ढे खोदकर कुमट के पौधे लगायें। पौधे से पौधे एवं कतार से कतार की दूरी अधिक रखने से किसान पेडों की कतारों के बीच दलहन अथवा धान्य फसलें लगाकर जमीन से शुरूआत में अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

## उपयोग

वनीय बंजर भूमि में पाया जाने वाला कुमट एक बहुउपयोगी पेड़ है। कुमट के सूखे बीज, खेजडी की कच्ची उबली हुई सूखी फलियां (सांगरी), कैर के कच्चे उबाले हुए सूखे फल (टींड), काचरी या कैरी व सूखी आखी लाल मिर्च को मिलाकर एक सब्जी बनायी जाती है जिसे *पंचकूटा* कहते हैं। शुष्क क्षेत्रों में इस सब्जी को होली के मौसम में सभी घरों में बनाया और खाया जाता है जो स्वादिष्ट, पाचक होने के साथ ही शरीर के लिये बहुत गुणकारी व लाभदायक माना जाता है। कम से कम मारवाड के शहरों और कस्बों में इन दिनों सुखाई हुई कैर, सांगरी एवं कुमटीया की सब्जी त्यौहार विशेष या शीतला सप्तमी के दिन, जिस दिन ठण्डा खाने की प्रथा है को बनाई जाती है। पंचकूटा सब्जी मंडी में कम तथा किराने की दुकान पर सूखे रूप में पैकेटों में बहुतायत और मेहँगे दामों पर मिलती है। इसका कारण इसके लम्बे समय तक खराब न होने की क्षमता है।

कुमट के बीजों में 20 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन पायी जाती है। इसके साथ ही कुमट की हरी फलियों में 22 प्रतिशत (तालिका 1) तथा पत्तियों में भी 20 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन पायी जाती है जिन्हे ऊंट, भेड व बकरियां बडे चाव से

### तालिका 1 : कुमट की हरी फली व बीज में पोषक तत्वों की मात्रा

| पोषक तत्व | हरी फली (प्रतिशत) | बीज (प्रतिशत) |
|---|---|---|
| क्रूड प्रोटीन | 22 | 39 |
| क्रूड फाइबर | 39 | 21 |
| नाइट्रोजन रहित पदार्थ | 31 | 26 |

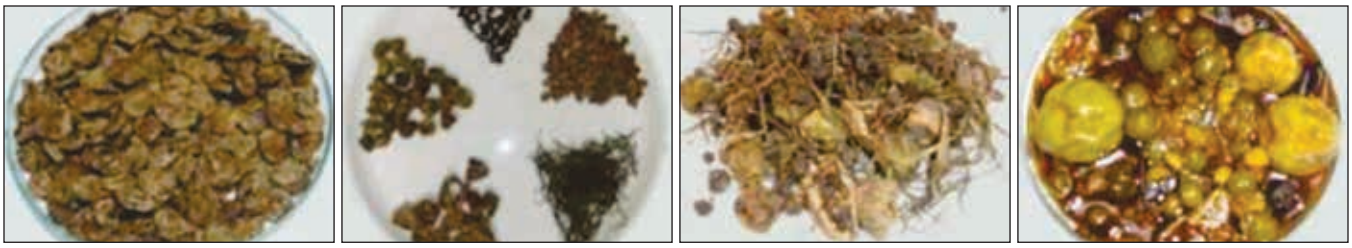

*कुमट के विभिन्न उत्पाद*

खाते हैं। जबकि हरी फलियों से प्राप्त कुमट के बीज पौष्टिक होने के कारण सब्जी के काम आता है।

## कुमट के प्रयोग के प्रकार

यदि कुमट को खेत के किनारे पर बाड़ के रूप में लगाया जाये तो आने वाले वर्षों में खेत के चारों और ऐसी बाड हो जायेगी कि खेत में जंगली जानवरों से कोई नुकसान नहीं होगा। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि पहले दो–तीन साल कुमट के पौधे की वृद्धि बहुत धीरे होती है। अतः पशुओं से रखवाली कर उचित बढवार के लिए समय पर आवश्यकतानुसार पानी देकर निराई–गुडाई कर बढवार को कम समय में बढाया जा सकता है। कुमट के विभिन्न उपयोग निम्नानुसार हैः

- पशुओं के चराई के लिये
- फल अर्थात बीज सूखने पर पंचकूटा बनाने में
- फल हरी सब्जी बनाने में काम में लेते हैं
- ईमारती या जलाऊ (ईंधन) लकड़ी के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। कुमट की लकड़ी अच्छे ईंधन के रूप में प्रयोग की जाती है। इसकी अनुमानित कैलोरी मान 3000 किलो कैलोरी प्रति किलो ग्राम है। धीमी बढवार के कारण इसका उपयोग ईंधन के रुप में सामान्यतः नहीं होता है
- कुमट से उच्च गुणवत्ता का गोंद भी प्राप्त होता है।

*कुमट का बाड के रूप में वृक्षारोपण*

## काजरी, जोधपुर द्वारा विकसित गोंद उत्पादन की उन्नत तकनीक

राजस्थान के कुमट वाले क्षेत्रों में गोंद उत्पादन की भारी क्षमता है यदि किसान उन्नत तकनीक के साथ गोंद का उत्पादन लें तो कुमट का पेड़ काफी लाभदायक हो सकता है। काजरी, जोधपुर ने गोंद उत्पादन को बढाने के लिये एक तकनीक विकसित की है।

गोंद उत्पादन के लिये 6 से 8 साल पुराने व 6 इंच से अधिक मोटाई वाले कुमट के पेड़ों का चयन किया जाता है। गोंद उत्पादन के लिये आमतौर पर रेतीले मैदानों और टिब्बों पर पाये जाने वाले पेड़ सबसे उपयुक्त होते हैं। कुमट में गोंद प्रेरक लगाने का उपयुक्त समय मार्च से मई का होता है। गोंद उत्पादन के लिये जमीन से 1 से 1.5 फीट ऊपर तने पर हाथ गिरमिट या बेटरी ड्रिल की मदद से 1 से 1.5 इंच गहरा व 1.5 से 2 सेंमी. व्यास का छेद किया जाता है। पेड़ के इस छेद में काजरी गोंद प्रेरक 4 मि.ली. प्रति पेड़ की दर से इंजेक्शन की सहायता से डालते हैं। छेद में काजरी गोंद प्रेरक डालने के बाद छेद के मुँह पर मोम या काली चिकनी गीली मिट्टी लगाकर छेद का मुँह बंद कर देते हैं ताकि प्रेरक बाहर नहीं निकल सके। गोंद प्रेरक लगाने के 8–10 दिनों बाद कुमट पेड़ से गोंद निकलना शुरू हो जाता है। गोंद लगभग एक–डेढ माह तक निकलता रहता है।

कुमट के पेड़ से गोंद तेज गर्मी (मई–जून माह) के साथ शुरू होता है। पत्तियों के साथ गोंद शुरू होता है तथा मौसम के ठण्डा होने पर बंद हो जाता है। गोंद तने,

*कुमट के पौधे से गोंद का निकलना*

मुख्य शाखाओं व अन्य शाखाओं पर जहाँ–जहाँ घाव या दरारें होती हैं वहाँ से प्राकृतिक रूप से निकलता है तथा औसतन 150–250 ग्राम प्रति पेड़ प्राप्त होता है।

पश्चिमी राजस्थान में वर्षा की कमी के कारण वातावरण शुष्क होता है इसलिए कुमट के पेड़ से गोंद कम निकलता है। अतः इन्जेक्शन (काजरी गोंद प्रेरक) से गोंद आसानी से निकल जाता है। इन्जेक्शन दो साल में एक बार लगाना चाहिये। जबकि गोंद की काजरी तकनीक अपनाने पर औसतन 500 ग्राम प्रति पेड़ गोंद प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार किसान कुमट से पंचकूटा के लिए कुमटीया प्राप्त कर सकते हैं साथ ही उच्च गुणवत्ता वाले गोंद का उत्पादन कर इसे बाजार में बेच कर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर अपने परिवार के रहन–सहन में सुधार कर सकते हैं। सूखे व अकाल की स्थिति में जब आमदनी का कोई साधन किसान के पास उपलब्ध नहीं होता है ऐसे समय में कुमट से गोंद उत्पादित कर किसान ठीक–ठाक आय प्राप्त कर सकता है।

**– समाप्त –**

आत्म–निरीक्षण इस संसार का सबसे कठिन,
किंतु करने योग्य कर्म है।

# उत्तम स्वास्थ्य एवं कुपोषण निवारण में सोया खाद्य पदार्थों का महत्व

राकेश सिंह[1], अजय कुमार मिश्रा[1], अलका कुमारी[2] एवं प्रवीण कुमार[1]

[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

[2]राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

स्वस्थ जीवन के लिए संतुलित एवं पर्याप्त मात्रा में आहार की आवश्यकता होती है। प्रतिदिन के भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थों का उचित मात्रा में समावेश करने से हमें आवश्यक पोषक पदार्थों की पूर्ति होती है। खाद्य विभाग तथा अन्य अधिकृत स्वास्थ्य संस्थाओं द्वारा किये गये सर्वेक्षणों में पाया गया कि भारत में बच्चे एवं महिलायें अत्यन्त कुपोषण ग्रस्त है। यह समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में बहुतायत में पायी जाती है भारत की लगभग 26 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे है तथा लगभग 36 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषण से ग्रसित है। इसके अलावा लगभग 50 प्रतिशत कुपोषित बच्चों में से 30 प्रतिशत बच्चे जन्म से ही कम वजन के होते हैं। गर्भावस्था के दौरान रक्ताल्पता जैसी बीमारियों से ग्रसित महिलाओं का प्रतिशत भी काफी अधिक है।

विभिन्न पोषक तत्वों में प्रोटीन मानव जीवन पोषण का महत्त्वपूर्ण अनिवार्य तत्व है जो कि शाकाहारी भोजन में अनाज एवं दालों से प्राप्त होता है। दूध तथा दूध से बने खाद्य पदार्थ भी अच्छी गुणवत्ता की प्रोटीन के स्रोत हैं परन्तु आर्थिक तंगी एवं जागरूकता की कमी आदि कारणों से समाज का एक बड़ा हिस्सा अक्सर इन अपेक्षाकृत महँगे खाद्य पदार्थों को समुचित मात्रा में उपयोग नहीं कर पाता है। प्रोटीन का अन्य स्रोत माँसाहार भी है

*भारत में कुपोषण का मुख्य कारण असंतुलित आहार*

जोकि दालों एवं दूध से भी महँगा है अतः भारतवर्ष में आर्थिक रूप से कमजोर विशेषकर गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले लगभग एक तिहाई कुपोषित वर्ग के लिए एक सस्ते व सरल तरीके से दैनिक जीवन के खाद्य में उपयोग किये जा सकने वाले उच्च गुणवत्तायुक्त प्रोटीन स्रोत की आवश्यकता है। सोयाबीन उपरोक्त संदर्भ में एक सक्षम व अपेक्षाकृत सस्ता स्रोत है।

सोयाबीन में सभी मुख्य पोषक तत्व आवश्यक मात्रा में उपलब्ध रहते हैं। साथ ही रेशा, खनिज लवण एवं विटामिन भी उपयुक्त मात्रा में पाये जाते हैं। यह सस्ते दामों में अच्छी प्रोटीन प्रदान करने का साधन है जोकि शाकाहारी भोजन में प्रोटीन की आवश्यकता को सहजता से पूरा करता है। सोयाबीन में लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन होता है जो कि किसी भी दलहन फसल से लगभग दो गुणा है। सोयाबीन (100 ग्राम) से प्राप्त प्रोटीन लगभग 1 लीटर दूध या 250 ग्राम माँस या 300 ग्राम अण्डे में उपलब्ध भोजन के बराबर होता है। अन्य पदार्थों के समान सोयाबीन में न केवल अच्छी गुणवत्ता का प्रोटीन है बल्कि अच्छी मात्रा (20 प्रतिशत) में उच्च गुणवत्ता का वसा (तेल) भी उपलब्ध है जिसमें संतृप्त वसीय अम्लों की मात्रा कम तथा आवश्यक वसीय अम्ल प्रचुर मात्रा में होते हैं। सोयाबीन में प्रोटीन एवं वसा के अलावा कैल्शियम, लौहा लवण, विटामिन बी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। अन्य दालों की तरह इसमें भी बड़ी मात्रा में पाचक एन्जाइम ट्रिप्सीन की गतिविधि का अवरोध करने वाला तत्व तथा अन्य सक्रिय जैविक अपोषक तत्व पाये जाते हैं जिसका अधिकांश भाग ताप से नष्ट होने के कारण सही प्रसंस्करण के पश्चात् पोषक पदार्थ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं, इसमें पाये जाने वाले पोषक गुणों के रहते हुये भी महँगी दालों, अनाज तथा माँसाहारी पदार्थों की अपेक्षा इस खाद्य पदार्थ का उपयोग काफी कम है। सोयाबीन के पोषक तत्वों की भागीदारी हमारे भोजन में

आवश्यक हो क्योंकि यह एक अत्यन्त पौष्टिक प्रोटीन सिद्ध हुआ है।

## सोया खाद्यों के उपयोग

### प्रोटीन का स्रोत

वयस्क पुरूषों के लिए प्रतिदिन लगभग 63 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है जबकि महिलाओं के लिए 50 ग्राम पर्याप्त है। प्रतिदिन की प्रोटीन की पूर्ति सोया निर्मित खाद्यों द्वारा की जा सकती है। सोया निर्मित खाद्य जैसे– टोफू, टेम्फे और सोया दूध में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। 113 ग्राम टेम्फे में 22 ग्राम प्रोटीन पायी जाती है।

### कोलन, प्रोस्टेट एवं ब्रेस्ट कैंसर रोकने में सहायक

जिन देशों में सोया खाद्यों का प्रयोग किया जाता है वहाँ कोलन कैंसर की दर बहुत कम देखी गयी है। दक्षिण अमेरिकी द्वीप हवाई में यह पाया गया कि रेशेवाली सब्जी एवं दलहन कोलन कैंसर को कम करने के लिए सहायक है और आइसोफ्लेवोन्स जो कि सोया खाद्यों में होता है, कैंसर को रोकता है।

### हृदय रोगों के नियंत्रण में सहायक

यह सर्वविदित है कि जिन देशों में सोया खाद्यों का नियमित उपयोग होता है वहाँ हृदय रोगों की दर कम पायी जाती है। कई शोध बताते हैं कि सोया खाद्य

*विभिन्न सोया उत्पाद*

कालेस्ट्रोल को कम करते हैं जिससे हृदय रोगों की रोकथाम होती है लेकिन लिपोप्रोटीन की सघनता को ज्यादा करता है। प्लेटलैट बढाने एवं रक्तचाप को नियन्त्रित करने में भी सोया पदार्थ सहायक सिद्ध हुए हैं।

### ओस्टियोपोरोसिस की रोकथाम में सहायक

एक कप टोफू लगभग 20 प्रतिशत अनुमोदित खुराक मात्रा तथा 1000 मिलीग्राम कैल्शियम की पूर्ति करता है जबकि टेम्फे लगभग 15 प्रतिशत तथा 154 मिलीग्राम कैल्शियम की पूर्ति करता है। टोफू एवं टेम्फे को लेने के साथ शारीरिक व्यायाम किया जाये तो ओस्टियोपोरोसिस को आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है क्योंकि सोयाबीन में उपस्थित आइसोफ्लेवोन्स हड्डियों के क्षरण को रोकता है।

### रजस्वला (मीनोपोज) लक्षणों को रोकने में सहायक

कई वैज्ञानिक शोधों से सिद्ध हुआ है कि सोया खाद्य पदार्थों के निरंतर प्रयोग से मिनोपोज से संबंधित तकलीफों को रोकने में मदद मिलती है।

## सोयाबीन प्रसंस्करण

जिस प्रकार हम दालों को उपयोग करने से पूर्व प्रसंस्करित करते हैं उसी प्रकार सोयाबीन को भी प्रसंस्करित करके भोजनोपयोगी बनाते हैं। सोयाबीन के साथ प्रसंस्करण प्रक्रिया इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इसमें पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा के साथ कुछ मात्रा में अपोषक तत्व भी पाये जाते हैं जिन्हें निष्क्रिय करना आवश्यक है। अपोषक तत्व निष्क्रिय करने की क्रिया अन्यन्त सरल है तथा थोड़े से अभ्यास से घरेलू स्तर पर संभव है।

सोया उत्पाद जैसे सोया मिल्क, सोया आटा, सोया सत्तू सोया बड़ी एवं सोया पनीर आदि केवल अपने देश में ही नहीं बल्कि विकासशील देशों में भी प्रोटीन की कमी को पूरा करने में उपयोग में लाया जाता है।

महत्वपूर्ण सोया खाद्य पदार्थों का वर्णन निम्नलिखित है।

## सोया खाद्य पदार्थ

### सोया आटा

आटा तैयार करने के लिए सर्वप्रथम अविकसित क्षतिग्रस्त दानों तथा अशुद्धियों को हटाकर सोयाबीन को साफ किया जाता है इसके बाद चक्की से छिलका निकाल कर दाल तैयार करते हैं। प्रतिपोषक तत्वों को समाप्त करने के लिए 1 किलोग्राम दाल में तीन गुणा पानी डालकर उबाला जाता है तथा उबलने के बाद अतिरिक्त पानी को बाहर निकालकर बची हुई दाल को सुखाते हैं इस तरह प्रसंस्करित सोया दाल तैयार है। सोया आटा बनाने के लिए प्रसंस्करित दाल को पीसकर 1 कि॰ग्रा॰ सोया आटा और 9 कि॰ग्रा॰ अनाज (गेहूँ, ज्वार और बाजरा) के अनुपात में मिलाकर आटा प्राप्त किया जा सकता है।

### सोया आटे का उपयोग

प्रोटीन परिपूर्ण सोया आटा 1 कि॰ग्रा॰ तथा 9 कि॰ग्रा॰ अनाज का आटा के अनुपात में मिश्रण कर उसका उपयोग रोटी, पूरी व पराठा तथा बेकरी उत्पादों को तैयार करने के लिए किया जा सकता है। वैकल्पिक तौर पर सोया आटा 1:1 अनुपात में बेसन के साथ मिलाकर भी प्रयोग किया जा सकता है तथा पारंपरिक खाद्य पदार्थों जैसे–सेव, पकौड़ा आदि तैयार करके भी उपयोग किया जा सकता है। अध्ययनों से पता चला है कि यदि सोया आटे को गेहूँ के आटे के साथ मिलाया जाए तो पोषण की दृष्टि से रोटी की पोषकता को सुधारा जा सकता है। सोया मिश्रित आटे से बनाई गई रोटियाँ, गेहूँ की रोटियों की तुलना में अधिक समय तक मुलायम रहती है क्योंकि सोयाबीन में उपस्थित वसा रोटी को मुलायम रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त सोया आटा मिलाने से रोटी में आवश्यक अमीनों अम्ल जैसे लाइसीन, लिपोनिन की पूर्ति होती है। पोलीथीन में पैक किया गया आटा कुल 2 माह तक सुरक्षित रहता है। आटे की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए पैकेट खोले जाने के 15 दिनो के अंदर प्रयोग कर लेना चाहिए।

### सोया दूध

रोजाना ताजा 1 लीटर सोया दूध तैयार करने के लिए 125 ग्राम सोयाबीन की आवश्यकता होती है। प्रतिपोषक तत्वों को दूर करने के लिए सोयाबीन को 10–16 घंटे पानी में भिगोने के बाद 20 मिनट तक गर्म किया जाता है तथा बाद में छिलका उतारकर पीस लिया जाता है इसके बाद 1 लीटर पानी में घोलते हैं एवं छलनी द्वारा छान लेते हैं। इसके बाद दूध को 5–10 मिनट तक उबालें

तथा ठण्डा करने के बाद फ्रीज में रखें। इसे अगले 3 दिन तक प्रयोग में ला सकते हैं। स्वादानुसार नमक का प्रयोग करें। जो पदार्थ छलनी में बचता है उसे रोटी या पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग करें।

**सोयायुक्त दूध के निम्नलिखित गुण हैं :**

- सोया दूध में केवल वनस्पति प्रोटीन होता है जोकि कैल्शियम द्वारा किडनी को होने वाले नुकसान से रोकता है।
- सोया दूध से 0.5 प्रतिशत कम बच्चों को एलर्जी होती है जबकि गाय के दूध से 2.5 प्रतिशत बच्चों को एलर्जी होती है।
- सोया दूध कोलस्ट्रॉल रहित होने की वजह से सेहत के लिए फायदेमंद है।
- सोया दूध में आइसोफ्लेवोन्स अधिक पाये जाते हैं।

## सोया सत्तू

सत्तू एक खाने योग्य तैयार मिश्रण होता है जिसे भूने गये चने एवं अन्य अनाज के मिश्रण से तैयार किया जाता है इसे देश के अधिकांश भागों में विशेषकर उत्तर प्रदेश एवं बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों मे नाश्ते के रूप में प्रयोग किया जाता है। सोयाबीन युक्त सत्तू पोषकता को बढ़ाकर उत्पादन की लागत को कम करता है। सोया–मक्का–चना सत्तू तैयार करने के लिए अनाज को गर्म रेत में भूना जाता है। इसके उपरांत उनका छिलका उतारा जाता है तत्पश्चात् सोयाबीनःमक्काःचना को 30:10:60 के अनुपात में मिलाकर पीस लिया जाता है एवं छलनी से छान लेते हैं। सोयाबीन मिलाये जाने से सत्तू में प्रोटीन एवं वसा की मात्रा में वृद्धि होती है।

## सोयानट्स

यह खाने योग्य सोया पदार्थ है। तले हुए अथवा भूने हुए सोयानट्स विभिन्न पद्धतियों से तैयार किये जा सकते हैं।

*सोया दूध से बच्चें के मानसिक एवं शारीरिक विकास में बदलाव*

तले हुए सोयानट्स तैयार करने के लिए सोयाबीन को पानी में 3 घंटे तक भिगोया जाता है जिसमें 5 प्रतिशत सोडियम बाईकार्बोनेट होता है। पानी को निकालकर सतह पर मौजूद नमी हटाकर 10 मिनट तक अथवा हल्का भूरा होने तक तेल में तलते हैं। इसके बाद नमक, खटाई, भूना पीसा जीरा इत्यादि मिलाकर वायुराधी डब्बे में भरकर भण्डारण करते हैं।

दूसरी विधि से सोयानट्स तैयार करने के लिए पानी में भिगोये तथा अच्छी तरह से सुखाये सोयाबीन को रेत में भूना जाता है। इस उत्पाद को अच्छी स्वीकार्यता प्राप्त हुई है। इन दानों में लगभग 35–38 प्रतिशत अच्छी गुणवत्ता की प्रोटीन तथा 26 प्रतिशत वसा होती है। जिससे प्रति 100 ग्राम दानों से 500 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

## नोट

कच्चे/अप्रसंस्करित सोयाबीन का सेवन स्वास्थ्यकर नहीं है अतः दीर्घायु अच्छे स्वास्थ्य एवं पोषण के लिए उपयुक्त विधि से प्रसंस्करित सोया आहार ही अपनायें।

**– समाप्त –**

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है।

# लवणीय मृदा एवं निम्न गुणवत्ता भूजल क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगने वाले बेल पत्र की औषधीय उपयोगिता

अजय कुमार मिश्रा[1], राकेश सिंह[1], अंशुमान सिंह[1], अलका कुमारी[2] एवं गिर्राज प्रसाद मीना[1]

[1]केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

[2]राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

आदि काल से ही प्रकृति और मानव समाज में अटूट संबंध रहे हैं। विश्व भर में अनेक जनजातियों और आदम समूहों ने पेड़–पौधों के सामीप्य में रहकर अपनी सभ्यता, खान–पान, रीति–रिवाजों आदि का विकास किया है परन्तु भौतिक विकास के वर्तमान समय में मनुष्य प्रकृति से दिनों दिन दूर होता चला गया। मानव के बिगड़ते खान–पान, रहन–सहन और दिनचर्या ने अनेक प्रकार की बीमारियों को जन्म दिया है। प्रकृति जैवविविधता से परिपूर्ण है और प्रत्येक वृक्ष अनेकों प्रकार के औषधीय गुणों से संपन्न है।

बेल *(ऐगल मारमेलोस)* को एक सशक्त फल फसल के रूप में चिह्नित किया गया है। बेल एक भारतीय वृक्ष है। शास्त्रपुराण एवं वैदिक साहित्य में इसे दिव्य वृक्ष कहा गया है। इस वृक्ष में लगे हुये पुराने पीले पड़े हुये फल एक वर्ष के उपरान्त भी पुनः हरे हो जाते हैं तथा इसके तोड़ कर सुरक्षित रखे हुये पत्ते 6 महीने तक ताजा बने रहते हैं एवं गुणविहीन नहीं होते। इस वृक्ष की छाया शीतल और आरोग्य कारक है। इन्हीं दिव्य गुणों के कारण यह बहुत पवित्र एवं अशुद्धि निवारक माना जाता है। जैविक और अजैविक तनावों के प्रति सहिष्णुता के कारण बेल को चुनौतीपूर्ण वातावरण तथा लवण प्रभावित मृदाओं में खेती हेतु संस्तुत किया जाता है। यद्यपि बेल के फल में विविध औषधीय गुण पाए जाते हैं तथापि वर्तमान में हमारे देश में बेल की व्यवस्थित और व्यावसायिक खेती नहीं की जा रही है। लवण प्रभावित वातावरण में बेल की खेती वैकल्पिक भूमि प्रयोग और फसल विविधीकरण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। बेल में फल प्रसंस्करण की अपार संभावनाएं हैं और छोटी–मध्यम प्रसंस्करण इकाईयों की स्थापना द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक रोजगार सृजन करते हुए महिलाओं और समाज के कमजोर वर्ग का सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण संभव है।

## मृदा

यद्यपि बेल की व्यावसायिक खेती हेतु सामान्य पीएच मान की दोमट मिट्टी उत्तम मानी जाती है। परन्तु बेल के बारे में ऐसा कहा जाता है कि यह किसी भी प्रकार की मिट्टी में आसानी से उगाया जा सकता है। ऐसी मान्यता है कि जहाँ दूसरे फलों को नहीं उगा सकते, वहाँ भी बेल की व्यावसायिक खेती संभव है।

## लवण सहनशीलता

मृदा चयन के समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि पर्याप्त जल निकास की सुविधा उपलब्ध हो, यदि जलनिकास अपर्याप्त है तो जलभराव की समस्या उत्पन हो सकती है और पौधे मर सकते हैं। यह विदित है कि शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु वाले सिंचित कृषि क्षेत्रों में मृदा लवणता एक गंभीर समस्या है। इसके साथ ही इन क्षेत्रों में भूजल लवणता भी एक गंभीर समस्या के रूप में उत्पन्न हो रही है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य एंव पोषण सुरक्षा हेतु देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग अति आवश्यक है। इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक होगा कि लवण प्रभावित मृदा उपयोग हेतु हमें वैकल्पिक फसल प्रणालियों की उपयुक्तता चिह्नित करनी होगी। ऐसा देखा गया है कि अनाज वाली प्रक्षेत्र फसलों जैसे धान व गेहूँ की तुलना में कुछ फल वाली फसलें अधिक लवण सहिष्णु होती हैं जिनकी व्यावसायिक खेती से लवण प्रभावित मृदाओं एवं जल का इष्टतम उपयोग संभव है। बेल एक ऐसी ही लवण सहिष्णु फल फसल है। उपलब्ध साहित्य के अनुसार बेल को मध्यम लवण सहिष्णु फल के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ऐसी मृदाएँ जिनकी वैद्युत चालकता लगभग 6 डेसी सीमन प्रति मीटर और विनिमययोग्य सोड़ियम प्रतिशतता लगभग 25 हो, में बेल की व्यावसायिक खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। लवण सहिष्णु होने

के साथ ही बेल फसल विभिन्न जैविक और अजैविक कारकों के प्रति भी सहिष्णु होता है।

## प्रजातियाँ

व्यावसायिक खेती हेतु बेल की मुख्य प्रजातियाँ नरेन्द्र बेल–5, नरेन्द्र बेल–9, सिष बेल–1, सिष बेल–2, पन्त अपर्णा और पन्त सुजाता है।

## वृक्षस्वरूप

इसका वृक्ष 25–30 फीट ऊँचा, 3–4 फीट मोटा, पत्र संयुक्त, त्रिफाक और गन्धयुक्त होता है। फल 2–4 इंच व्यास का गोलाकार धूसर पीताभ होता है। बीज छोटे कड़े तथा अनेक होते हैं।

## रासायनिक संघटन

बेल के अंदर टैनिक अम्ल, एक वाष्पीकरणीय तेल, एक कड़वा तत्व और एक चिकना लुआबदार पदार्थ पाया जाता है। इसकी जड़, पत्तों और छाल में खून में शक्कर को कम करने वाले तत्व पाये जाते हैं। फल के गूदे में मार्मेलोसिन तथा बीजों में पीले रंग का तेल होता है जो बहुत ही उत्तम विरेचक का कार्य करता है।

## गुण–धर्म और औषधीय प्रयोग

पके हुए फलों का गूदा और उससे तैयार शरबत को रेचक, टॉनिक व पाचक गुणों हेतु जाना जाता है। सौंफ और अदरक के साथ तैयार किया गया कच्चे फलों का काढ़ा बवासीर के उपचार में प्रभावी होता है। फलों के गूदे में उपस्थित सोरलिन नामक रसायन त्वचा को कड़ी धूप से होने वाले दुष्प्रभाव से बचाता है। गूदे से प्राप्त मार्मेलोसिन नामक अवयव रेचक और मूत्रवर्धक गुणों के लिए जाना जाता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिक मात्रा में मार्मेलोसिन श्वास दर और हृदय गति को घटा देता है। औषधीय प्रयोग हेतु कच्चे फलों के क्षैतिज टुकड़ों को काटकर धूप में सुखा लेते हैं। जंगली बेल से प्राप्त कच्चे फलों में तीखापन होता है और उनका गूदा दस्त और पेचिस के उपचार में प्रभावी होता है। फलों के बीज से तीखा, हल्का पीला तेल प्राप्त होता है, जो थोड़ी मात्रा में पेट साफ करने में प्रभावी है। तेल निकालने के उपरान्त शेष बीज की खली में 70 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। पत्तियों का तीखा रस शहद के साथ मिलाकर लेने पर सर्दी–जुकाम और बुखार के ईलाज में लाभकारी है। पत्तियों के रस में शहद और काली मिर्च मिलाकर सेवन करने से पीलिया रोग और कब्ज में भी राहत मिलती है। पत्तियों का काढ़ा अस्थमा रोग में लाभकारी होता है। पत्तियों का गर्म प्रलेप सूजन और प्रदाह से राहत देता है। छाल से तैयार काढ़ा मलेरिया के निदान हेतु संस्तुत किया जाता है। जड़ों से तैयार काढ़ा घबराहट रोकने में प्रभावी है। फलों, जड़ों और पत्तियों में एण्टीबायोटिक गुण पाये जाते हैं और उनका प्रयोग सर्पदंश के उपचार में होता है।

## बेल वृक्ष के विभिन्न भागों के औषधीय गुण

**कच्चे फलः** लघु, तिक्त, कषाय, दीपन, पाचन, स्निग्ध, उष्ण तथा शूल, आमवात, सग्रहणी, कफातिसार, वात, कफनाशक तथा आंत के लिये बल्य है।

**अर्धपक्व फलः** लघु, कटु, कसैला, उष्ण, स्निग्ध, संकोचक, दीपन, पाचन, हृदय एवं कफ वात नाशक है। विल्व की मज्जा और बीज का तेल अति उष्ण एवं तीव्र वातनाशक होता है।

**पक्के फलः** गुरू, कटू, तिक्त रस युक्त, मधुर रस प्रधान, उष्ण, आहकारक, मृदुरेचक (अधिक मात्रा में कब्जकारक) वातानुलोमक, हृदय एवं बल्य है।

**पत्रः** संकोचक, पाचक, त्रिदोष वकारनाशक, कफ निःसारक, व्रणशोधक, शोथहर, वेदना, स्थापन तथा मधुमेह, जलोदर, कामला, ज्वार, नेत्राभिष्यंद आदि में उपयोगी है।

**मूल और छालः** लघु, मधुर, वमन, शुल, त्रिदोष, नाड़ी तंतूओं के लिये शामक कुछ नशा पैदा करने वाली, ज्वार, अग्निमांद्य, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ, हृदय की दुर्बलता आदि में प्रयुक्त होती है।

## विभिन्न व्याधियों हेतु बेल के उपयोग आधारित उपचार

**शिरः शूलः**

- सिर के शूल में बेल की सूखी हुई जड़ को थोड़े जल के साथ पीसकर, मस्तक पर गाढ़ा लेप करने से लाभ होता है।
- एक कपड़े को पत्रस्वरस में तर कर उसकी पट्टी सिर पर रखने से लाभ हाता है। पत्ते पीसकर सिर पर लेप करने से भी लाभ होता है।

**नेत्राभिष्यन्दः** बेल के पत्तों पर घी लगाकर तथा सेंककर आँखों पर बांधने से, पत्तों का स्वच्छ स्वरस आँखों में टपकाने से, साथ ही पत्तों को पीसकर कल्क का लेप पलकों पर करने से नेत्रों के बहुत से रोग दूर होते हैं।

**रतौंधीः**

- दस ग्राम ताजे पत्तों को 7 नग काली मिर्च के साथ पीसकर 100 ग्राम जल में छानकर, 25 ग्राम मिश्री या शक्कर मिलाकर सुबह–शाम पीयें तथा रात्रि में बिल्व पत्र भिगोये हुए जल से प्रातःकाल आँखों को धोयें।
- बेल पत्र रस 10 ग्राम, गाय का घी 6 ग्राम और कपूर 1 ग्राम तांबे की कटोरी में इतना रगड़ें कि काला सुरमा बन जाये। इसे आँखों में लगायें और प्रातःकाल गौमूत्र से आँख धोयें।

**बहरापनः** बेल के कोमल पत्र निरोगी गाय के मूत्र में पीसकर तथा चार गुणा तिल का तेल तथा 16 गुणा बकरी का दूध मिलाकर मंद अग्नि द्वारा तेल सिद्ध कर रख लें। इसे नित्य कानों में ड़ालने से बहरापन, सनसनाहट (कर्णनाद), कानों की खुश्की, खुजली आदि रोग दूर होते हैं।

**क्षय, श्वास, वमनः** बेल मूल, अडूसा पत्र तथा नागफनी थूहर के पके सूखे हुए फल 4–4 भाग, सोंठ, काली मिर्च व पिपली 1–1 भाग लेकर उसको कूट कर रखें, उसमें से 20 ग्राम लगभग सबको कूटकर आधा लीटर जल में चतुर्थास कर, प्रातः सायं शहद के साथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

**हृदय शूल :** पत्र स्वरस 1 ग्राम में गाय का घी 5 ग्राम मिलाकर चटायें।

**उदर शूलः**

- बेलपत्र 10 ग्राम, काली मिर्च 7 नग पीसकर, 10 ग्राम मिश्री मिलाकर शर्बत बनाकर दिन में तीन बार पिलायें।
- बेल मूल, एरड़ मूल, चित्रक मूल और सोंठ एक साथ कूट कर अष्टमांष क्वाथ सिद्धकर उसमें थोड़ी सी भुनी हुई हींग तथा सेंधा नमक 1 ग्राम बुरककर, 20–20 ग्राम की मात्रा में पिलाने से तत्काल ही विशेषतः वात तथा कफजन्य शूल मिट जाता है। इन द्रव्यों का कल्क गरम कर उदर पर लेप करने से भी लाभ होता है।

**दाह, तृष्णा, अजीर्ण, अम्लपित्तः**

- 20 ग्राम बेल पत्र को 500 ग्राम जल में 3 घटें तक डुबोकर रखें। प्रति 2 घंटे पर 20–20 ग्राम वही जल पिलायें। आंतरिक दाह शांत हो जाता है।
- छाती में जलन हो तो पत्रों को जल के साथ पीस छानकर, 20 ग्राम में थोड़ी मिश्री मिलाकर दिन में 3–4 बार पिलायें।
- 10 ग्राम पत्र स्वरस में काली मिच, सेंधा नमक 1–1 ग्राम मिलाकर दिन में तीन बार सेवन करें।

**मंदाग्निः**

- भूख न लगने तथा पाचन शक्ति कमजोर हो जाने पर, बेलगिरी चूर्ण, छोटी पिपली, बंसलोचन व मिश्री 2–2 ग्राम एकत्र कर इसमें 10 ग्राम तक अदरक का रस मिलाकर तथा थोड़ा जल मिलाकर आग में पकायें। गाढ़ा हो जाने पर दिन में 4 बार चटायें।
- बेलगिरी चूर्ण 100 ग्राम और अदरक 20 ग्राम दोनों को पीसकर 50 ग्राम शक्कर व 20 ग्राम इलायची मिलाकर चूर्ण कर लें। सुबह–शाम भोजनोपरान्त आधा चम्मच गुनगुने जल से लेने से आंव का पाचन होगा, भूख बढ़ेगी।
- बेलगिरी का पका फल मंदाग्नि और ज्वार में भी अति लाभदायक है।

**संग्रहणीः**

- बेलगिरी चूर्ण 10 ग्राम, सौंठ चूर्ण और पुराना गुड़ 6–6 ग्राम खरल कर, दिन में तीन या चार बार छाछ के साथ 3 ग्राम की मात्रा में सेवन करायें। भोजन में केवल छाछ दें।
- बेलगिरी और कुड़ाछाल दोनों का चूर्ण एकत्र कर मिलायें (10 से 20 ग्राम तक) रात्री के समय 150 ग्राम जल में भिगोकर, प्रातः छानकर पिलायें।
- कच्चे बेल को आग में सेककर, 10 से 20 ग्राम गूदे में थोड़ी शक्कर और शहद मिलाकर पिलायें।

*बेल का फल एवं उसके आंतरिक भाग*

**प्रवाहिका:**

- कच्चे बेल का गूदा, गुड़, तिल, पिपली, सौंठ, इन्हें समभाग में मिश्रित कर प्रवाहिका से जब उदर में वातरूद्ध शूल हो और बार–बार उपवेश की इच्छा हो, पर पूरी न होकर थोड़ा–थोड़ा आंव सहित आये तब 10–20 ग्राम की मात्रा प्रातः–सायं प्रयोग करना चाहिए।
- बेलगिरी एवं तिल समभाग लेकर कल्क कर, दही की मलाई या घी के साथ सेवन करें।
- प्रवाहिका में पत्र स्वरस 10 ग्राम में 3 ग्राम शहद मिलाकर प्रति तीन घंटे के अन्तराल पर चटाते रहें।

**जलोअरः**

- ताजे पत्रों के 25 से 50 ग्राम रस में छोटी पिपली चूर्ण एक या ड़ेढ ग्राम मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

## निष्कर्ष

आज संपूर्ण विश्व को अनेक प्रकार की बीमारियों ने घेर लिया है। जहाँ एलोपैथिक दवाईयाँ बीमारियों को दबा देती है वहीं पेड़–पौधों से प्राप्त औषधियाँ बीमारियों को जड़ से उखाड़ फेंकती हैं और इसके दुष्प्रभाव भी नहीं होते हैं। हमारे रहन सहन में तेजी से हो रहे बदलाव जनित व्याधियों के निवारण में बेलपत्र का प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में हमारे लिए उपयोगी है। आज इस भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में जरूरत है तो मात्र प्रकृति की ओर लौटने की। भौतिक, दैविक और दैहिक तीनों रूपों से स्वस्थ रहने के लिए अपने घर–आंगन में निश्चित रूप से बेलपत्र लगाना चाहिए। सभी लोगों को इसकी उपयोगिता से अवगत कराकर काफी व्याधियों से बचाव किया जा सकता है।

**– समाप्त –**

संसार में अपने पंखो को फैलाना सीखो
क्योंकि दूसरों के पंखो के सहारे उड़ना संभव नहीं।

# पादप संरक्षण एवं जैविक खेतीः पूर्वोत्तर भारत में पारिस्थितिकी तंत्र आधारित वैज्ञानिक एवं पारंपरिक ज्ञान का एक अनुभव उल्लेख

रंजय कुमार सिंह

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

इस आलेख में जैविक खेती में प्राकृतिक तथा रासायनिक कीटनाशकों की भूमिका तथा उनका कृषि पारिस्थितिकी तंत्र से तारतम्य पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। रासायनिक और जैविक खेती के तुलनात्मक विवेचन के साथ–साथ पूर्वोत्तर राज्यों को आगे बढ़ाने के संबंध में कृषकों द्वारा अपनाई जाने वाली पद्धतियों एवं तकनीकियों से भी जोड़ने का प्रयास किया गया है। इस आलेख में पूरे पर्यावरण, पारिस्थितिकी तथा मानव स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए पादप संरक्षण में कीटनाशकों की भूमिका, कृषकों द्वारा जैविक कृषि पद्धतियों तथा तकनीकियों पर विशेषज्ञों की सलाह आदि पर विचार सम्मिलित किए गए हैं। जैविक रसायनों का उपयोग करते हुए खाद्य पदार्थों को वर्तमान अर्थव्यवस्था तथा घरेलू बाजार के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में स्थापित करने के मानदंडों और सिद्धांतों की भी विवेचना की गई है। जैविक कीटनाशकों के विभिन्न आयाम और लाभ तथा चुनौतियों को भी इस आलेख में विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

## पादप संरक्षण एवं जैविक खेती

बढ़ती हुई खाद्य आवश्यकताओं तथा पर्यावरणीय बदलावों के चलते आज भारतीय कृषि काफी परिवर्तनशील दौर से गुजर रही है। फसलों से उच्च उत्पादन प्राप्त करने के लिए कृषि की आधुनिक तकनीकों में से एक आयाम फसल संरक्षण पर होने वाले खर्च में कीटनाशक रसायन जोखिम को कम करने वाले सबसे बड़े कारक हैं। कीटनाशक तथा फफूंदनाशक रसायनों के उपयोग से विकासशील देशों की कृषि उत्पादकता में क्रान्ति आयी है। भारतीय कृषि इतिहास में सन् 1950–1960 तक अधिकांशतः फसल संरक्षण में उपयोग होने वाले कृषि रसायनों को मुख्यतः नकदी फसलों (चाय, तंबाकू, अंगूर इत्यादि) में उपयोग करके बीमारी या कीटों का प्रकोप कम किया जाता था। अन्य फसलों में देशी तरीकों से छोटे–मोटे प्रकोपों को नियंत्रित किया जाता था।

हालांकि यह सच है कि फसलों की संकर प्रजातियों के आने के साथ–साथ, सघन खेती तथा फफूंदनाशक एवं कीटनाशक रसायनों के उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई, जिससे फसलों में होने वाली क्षति को कम किया जा सका है।

वर्तमान में बाजार में कई प्रकार के रसायन उपलब्ध है, जिनका उपयोग किसान पादप संरक्षण के लिए करते हैं। विभिन्न शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि पादप संरक्षण में उपयोग आने वाले कृषि रसायन पारिस्थितिकी को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करने के साथ–साथ मानव स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुँचाते हैं। अविवेकपूर्ण उपयोग की वजह से विकसित देशों में तो पर्यावरणीय ओजोन परत को भी क्षति पहुँची है तथा अमेरिका ने अत्यधिक रसायन उपयोग करने वाले किसानों को 'एग्रोटेरेरिस्ट' की संज्ञा दे डाली है। जबकि सर्वप्रथम अमेरिका ने ही कृषि रसायनों को प्रोत्साहन दिया था। यद्यपि कृषि रसायनों के उपयोग से हमारी फसलों की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, लेकिन कृषि रसायनों के भूमि में शेष अवशिष्टों पर किये गये शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि क्लोरीनयुक्त कीटनाशक जोकि जैविक विघटन रोधी हैं, मानव तथा पशुओं के साथ–साथ संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को भी नुकसान पहुँचाते हैं।

पादप संरक्षण में उपयोग आने वाले कृषि रसायन आज हमारे अधिकांश खाद्य पदार्थों में अवशेष के रूप में विद्यमान हैं, जोकि एक चिंता का विषय है। तालिका 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि पूरे देश के साथ–साथ पूर्वोत्तर राज्यों में कीटनाशक रसायनों की खपत और स्तर दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि मिजोरम, नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश कीटनाशकों का सबसे कम उपयोग करतें हैं और प्राकृतिक कृषि के मानदंड को अभी भी

**तालिका 1 : पूर्वोत्तर राज्यों में कीटनाशक रसायनों का उपयोग (टन में)**

| राज्य | 1985–86 | 1986–87 | 1987–88 | 1994–95 |
|---|---|---|---|---|
| अरुणाचल प्रदेश | 17 | 18 | 25 | 42 |
| असम | 810 | 1410 | 531 | 630 |
| मणिपुर | 43 | 40 | 38 | 42 |
| मिजोरम | 06 | 07 | 10 | 13 |
| नागालैंड | 09 | 41 | 03 | – |
| त्रिपुरा | 190 | 160 | 138 | 100 |
| मेघालय | 40 | 42 | 44 | 19 |
| कुल मात्रा | 62219 | 67272 | 66896 | 80659 |

अपनाये हुए है। यह आश्चर्यजनक बात है कि 1980 तक जो किसान आधुनिक कीटनाशकों का उपयोग नहीं करते थे उन्हें "लेगार्ड" यानी पिछड़ा हुआ किसान कहते थे। लेकिन आज हमारी परिभाषा बदल गयी है, अब जो किसान कीटनाशक रसायनों का उपयोग नहीं करते हैं उन्हें हम नवप्रर्वतक (इनोवेटर) कह रहे हैं क्योंकि आज कृषि का संदर्भ बदल गया है और हम इसे पर्यावरण और स्वास्थ्य के नजरिये से देखने लगे हैं। इस अवसर का फायदा उठाते हुए मिजोरम सरकार ने अपने राज्य को 'जैविक खेती' करने वाला राज्य घोषित किया है। परन्तु जैविक उत्पाद को बाजार में लाभप्रद एवं लोकप्रिय बनाने के लिए मिजोरम सरकार को कई सघन मानदंडों से गुजरना पडेगा।

कीटनाशक तथा फफूंदनाशकों के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए कृषि वैज्ञानिक, सरकार तथा नीति निर्धारकों ने आज एक आंदोलन छेड़ने जैसा माहैल बना रखा है, ताकि हम अपनी कृषि में रसायनों का उपयोग कम करें और इसे जैविक बनायें।

जैविक खेती के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है:

- समगतिशील एवं स्थाई उत्पादकता
- पर्यावरण संरक्षण
- रसायन मुक्त खाद्य उत्पादन
- अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय जैविक खाद्य पदार्थों की खपत बढ़ाना
- कीटनाशक रसायनों के दुष्प्रभावों से होने वाली बीमारियों को कम करना तथा
- कृषि में संभावित जोखिम को कम करने के साथ–साथ किसानों को अधिकतम लाभ पहुँचाना

## जैविक खेती की प्रक्रियाएँ

जैविक खेती का प्रबंधन एक समग्र प्रक्रिया है जिसमें पारिस्थितिकी प्रणाली को ध्यान में रखते हुए, जैविक विविधता, जैविक चक्र, मृदा जैविक प्रक्रिया तथा कई अन्य सामाजिक एवं आर्थिक कारकों से गुजरते हैं। इन कारकों को हम कृषि प्रक्षेत्र से प्राप्त होने वाले फसल एवं पशुओं के अवशेषों का उपयोग, रसायन मुक्त खरपतवार नियंत्रण, जैविक विधियों द्वारा बीमारियों एवं कीटों का नियंत्रण तथा समग्र पादप पोषण प्रबंधन एवं उत्पादन के सिद्धांतों के आधार पर अंगीकरण करते हुए आगे बढ़ सकते हैं।

वैज्ञानिकों द्वारा किये गये शोध कार्य दर्शातें हैं कि रासायनिक कीटनाशक तथा फफूंदनाशक लाभदायक जन्तुओं जैसे मकड़ी, केंचुआ, सोनपाखरा (लेडीबर्ड बीटल), घेंघा, केंकड़ा आदि जो धान की फसल के लिए फायदेमंद है, को भी नुकसान पहुँचाते हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि ये रासायनिक कीटनाशक खाद्य पदार्थों के साथ–साथ माँ के दूध तक में अपने कुप्रभाव छोड़ते हैं। इसलिए इन बातों को मद्देनजर रखते हुए जब हम कीटनाशकों का चुनाव अपनी फसलों के लिए करें तो पशु व मानव के साथ–साथ जल, मृदा तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को नजर अंदाज न करें।

## सस्य विधियाँ

- फसलों में यदि सस्य चक्र को सही रूप से अपनाया जाए तो कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जा सकता है, साथ ही साथ कुछ कीटों पर सफलतापूर्वक नियंत्रण भी पाया जा सकता है। जैसे

आलू के कीट (पोटेटो ट्यूबर मोथ) को नियंत्रित करने के लिए 3 वर्ष तक आलू को लगातार एक ही खेत में नहीं लगाना चाहिए। इसी तरह गन्ने की पेड़ी फसल (रैटून) में तना बेधक ज्यादा लगता है जबकि नयी फसल में तना बेधक का प्रकोप कम होता है।

- धान की फसल को समय से थोड़ा पहले लगायें तो छेदक के प्रकोप को कम कर सकते हैं।
- समुचित उर्वरक तथा सही मात्रा में सिंचाई से कीटों के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
- मुख्य फसल के साथ–साथ कीटों को आकर्षित करने वाली फसलों को लगाकर कीट प्रकोप कम कर सकते हैं, जैसे गन्ने की फसल के चारों तरफ पटुवा (मालवेसी परिवार) की फसल लगाकर गन्ने में तना बेधकों का प्रकोप कम कर सकते हैं। चने के खेत में धनिया फसल ली जाए तो चना में कटुवा और सूंडी के प्रकोप को कम किया जा सकता है। उपरोक्त तकनीकियाँ पूर्वी उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ के किसानों में काफी प्रचलित रही हैं तथा वैज्ञानिक तौर पर प्रभावी पायी गयी है। इसी प्रकार अधिकांश फसलों को अरुणाचल प्रदेश के किसान मिश्रित रूप में उगाते है जिससे बीमारी एवं कीड़ों का प्रकोप कम हो।
- कीटरोधी फसलों की प्रजातियों का चुनाव करना
- भौतिक एवं पारंपरिक नियंत्रण का समन्वयन रखना
- कानूनी नियंत्रण
- जैविक नियंत्रणः परजीवियों तथा परभक्षियों का उपयोग करना जैसे वूली एफिड को *एपानटेलस ग्लोमेरैटस* द्वारा नियंत्रित करना तथा जैविक कीटनाशक का उपयोग करना। फफूंद बीएयुबेरिया, एंटमोपथेरा, बैक्टीरिया *बैसिलस थुरीनजिएंसिस* और वायरस न्यूक्लीयर पॉलीहेड्रोसिस।
- हारमोन एवं फेरोमोन्स का उपयोग करना, जैसे पोटेटो ट्यूबर मोथ दूर भगाने वाले, आकर्षित करने वाले तथा कीटों में बांझपन लाने वाले पदार्थों का उपयोग करना।
- वनस्पतियों से निर्मित कीटनाशकों का उपयोग करना जैसे नीम, तम्बाकू, वेशरम *(आइपोमिया कार्निया)*
- पारंपरिक ज्ञान तथा किसानों द्वारा खोजे गये तरीकों एवं तकनीकियों का उपयोग करना।

यहाँ पर कुछ पारंपरिक ज्ञान तथा तकनीकियों पर प्रकाश डाला जा रहा है जिनका उपयोग हमारे किसान पूर्वोत्तर राज्य अरुणाचल प्रदेश में कीट नियंत्रण के तौर पर करते हैं। पूर्वोत्तर राज्यों के कृषि विकास पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि यहाँ अभी भी किसान फसलों की देशी प्रजातियों का ही उपयोग करते हैं जिसमें बीमारी या कीटों का प्रकोप कम होता है। प्रकोप होने पर इनका प्रबंधन विभिन्न प्रकार के जैविक एवं सस्य तरीकों द्वारा ही किया जाता है। विशिष्ट तौर पर अरुणाचल प्रदेश में किसानों द्वारा उपयोग किये जाने वाले जैविक पादप संरक्षण तथा जैविक सस्य क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। ऐसी पद्धतियों को अपनाकर अन्य किसान भी अपनी खेती को जैविक तथा पर्यावरण अनुकूल बना सकते हैं।

## संतरे में फल चूषक (फ्रूट सकिंग मोथ) का नियंत्रण

पूर्वी सियांग जिले के किसान संतरे में फल चूषक के प्रकोप से काफी प्रभावित होते हैं और उनकी फसल को इस कीट से 15–20 प्रतिशत तक नुकसान होता है। इससे बचने के लिए "रुकुंग" *(आइसोफॉइला स्मैरगडिना)* नामक कीड़े को संतरे के पेड़ पर आकर्षित करतें हैं। ऐसा करने के लिए किसान गुड़ तथा माँस के टुकड़ों को टहनियों पर बांध देते हैं जिससे "रुकुंग" कीड़ा आकर्षित होता है। यहाँ बताना आवश्यक है कि आदिवासी समुदाय के लोग रुकुंग कीट को मलेरिया नियंत्रण में भी उपयोग

*रुकुंग कीड़ा*

करते हैं। रुकुंग कीट फल चूषक को धीरे–धीरे खाना शुरू कर देता है, और कुछ समय बाद सारे फल चूषक का नियंत्रण हो जाता है।

## धान के कीटों का नियंत्रण

आदिवासी समुदाय के लोग धान में आने वाले कीटों का नियंत्रण विभिन्न जैविक विधियों द्वारा करते हैं।

## ओंगेर की पत्तियों का उपयोग

ओंगेर *(जैंथोजाइलम रेहत्सा)* एक झाड़ीदार पौधा है जो अधिकांशतः अरुणाचल प्रदेश और नागालैड में पाया जाता है। धान के कीड़े को नियंत्रित करने के अलावा ओंगेर के पत्तों का उपयोग सब्जी के रूप में भी किया जाता है। धान के वह खेत जो पहाड़ के नजदीक होते हैं और वहाँ जंगल के उपरी भागों से पानी बहता हुआ नीचे धान के खेतों में आता है, ऐसे धान के खेतों में ओंगेर के 2–3 कि॰ग्रा॰ हरे पत्तों को हल्का कुचलने के बाद कपड़े में बांधकर नाली से गुजरते हुए पानी में रख देते हैं। इस तकनीकी का प्रभाव उन कीड़ों पर होता है जो पानी की सतह और धान की फसल के नजदीक रहते हैं।

*ओंगेर के पत्ते*

## केंकड़ा और मेंढक के मांस का उपयोग

धान के दानों को दूधिया अवस्था में गंधीबग द्वारा चूसने से बचाने और आकर्षित करने के लिए केंकडा एवं मेंढक के मांस का उपयोग करते हैं। आदिवासी किसान केंकड़ा या मेंढक मारकर मांस को कपड़े में बाँधकर पोटली को बाँस की टहनियों के सहारे धान के खेत में जहाँ–तहाँ गाड देते हैं।

इन क्षेत्रों में यह भी पाया गया है कि किसान "तारी कीड़ा" *(एस्पोंगोपस नैजस)* का उपयोग उपरोक्त विधि से करके गंधीबग को आकर्षित करते हैं। कुछ आदिवासी

*केंकड़ा*

किसान मेंढक की कुछ प्रजातियों को जान–बूझकर धान के खेतों में पालते हैं जो उछलकर कीटों को खाते रहते हैं।

*तारी कीड़ा*

## नामसिंग यींग के पौधों का उपयोग

गंधीबग के प्रकोप से धान की फसल को बचाने के लिए नामसिंग यींग *(एजीरैटम कोनीज्बॉइडस)* के पौधों के छोटे–छोटे बंडल बनाकर धान के खेत में रस्सी के सहारे लटकाते हैं या फिर धान की बाड़ (फेंसिंग) के ऊपर लटका देते हैं। इस वानस्पतिक तकनीक को और प्रचलित करने के लिए एक समय तत्कालिन कृषि मंत्री श्री ताको दाबी ने कृषि विभाग द्वारा एक परिपत्र जारी करवाया था।

## मिनांगमोसे के पत्तों का उपयोग

अरुणाचल प्रदेश का दिरांग क्षेत्र जहाँ के किसान सेब तथा उप–शीतोष्ण मौसम वाली सब्जियों का उत्पादन

*नामसिंग का पौधा*

*सामुदायिक आधार पर संरक्षित पैसांग के पेड़*

करते हैं, मृदा जनित कीड़ों के प्रकोप से बचने के लिए मिनांगमोसे *(जीमनोक्लेडेस असैमिकस)* के हरे पत्तों को आलू, अदरक, हल्दी तथा गाजर की बुआई के समय मिट्टी में मिला देते हैं। मोनपा किसानों का कहना है कि इस वानस्पतिक कीटनाशक तकनीक से मृदा जनित

*मिनांगमोसे का पेड़*

कीटों के नियंत्रण में काफी मदद मिलती है।

## पैसांग के पत्तों का पलवार (मल्च) तथा कम्पोस्ट में उपयोग

पश्चिमी कमेंग जिले के दिरांग खण्ड के मोनपा समुदाय के लोग उप–शीतोष्ण जलवायु में रहते हैं तथा वर्षा आधारित भेषज फसलों की खेती करते हैं। पानी की कमी तथा रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की अनुपयोगिता को देखते हुए, मोनपा किसानों ने एक विशिष्ट प्रकार का जैविक तथा पारिस्थितिकी ज्ञान विकसित किया है। इसके तहत वे पैसांग *(क्वेरकस ग्रिफीथी)* पेड़ के सूखे पत्तों को नवम्बर–दिसम्बर महीनों में एकत्रित करते हैं। इन पत्तों को तीन रूप में तैयार करके पलवार तथा वानस्पतिक खाद (कम्पोस्ट) बनाते हैं।

पहले श्रेणी के तहत सीधे तौर पर सूखे पत्तों को ही खेत में पलवार के तौर पर बिछा दिया जाता है। इस तरह की पलवार मक्का, सोयाबीन, गेहूँ, जौ, मंडुवा तथा धान की फसलों में करतें हैं। दूसरी श्रेणी में पैसांग के पत्तों को सूअर, मुर्गी तथा याक के मल के साथ मिश्रित करके अर्ध–वानस्पतिक खाद बनाते हैं। इसको मिर्च, सोयाबीन, गोभी, टमाटर, आलू, लहसुन तथा दूसरी महत्वपूर्ण सब्जी वाली फसलों में डाला जाता है।

तीसरी पद्धति में मोनपा किसान पैसांग के पत्तों को पूरे वानस्पतिक खाद के तौर पर तैयार करते हैं और इसे सेब, कीवी, चुकन्दर, शलजम तथा अन्य फसलों में डालते हैं जहाँ खेत ढलान पर घाटी के निचले भाग में होता

*मिर्च की फसल में पैसांग के पत्तों से बनी अर्ध–वानस्पतिक खाद का उपयोग*

है। पैसांग के पत्तों का महत्व देखते हुए मोनपा लोगों ने अनौपचारिक सामाजिक संस्था बनायी है जिसे "छोपा" कहते हैं जो पैसांग के पेड़ों का संरक्षण करने का कार्य करती है। पैसांग के पत्तों के सहारे करीब 32 भेषज फसलों का संरक्षण मोनपा लोग जैविक तौर पर करते आ रहे हैं। यह पद्धति कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को समगतिशील बनाने के साथ साथ मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ाकर लचीला तथा जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल भी बनाती है।

## जैविक खेती के लाभ

उपरोक्त वर्णित जैविक खेती के उदाहरणों तथा विश्व स्तर पर किये गये शोध कार्यों से यह पता चलता है कि जैविक खेती द्वारा निम्नलिखित लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं:

- आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा करना
- पेयजल की गुणवत्ता बरकरार रखना
- ऊर्जा संरक्षण
- स्वास्थ्य सुरक्षा
- किसानों को प्रोत्साहन तथा उनके कृषि उत्पादों को अधिक लाभप्रद बनाना तथा
- जैव विविधता संरक्षण एवं टिकाऊपनः यह सर्वविदित है कि जैविक खेती की तुलना यदि हम रासायनिक कीटनाशकों द्वारा नियंत्रित खेती से करें तो जैव विविधता के क्षरण को रोकने में कामयाब नहीं हो सकते। जैविक तथा रासायनिक कीटनाशकों की कुछ बाजारीय अवधारणाओं का अंतर तालिका 2 में दिया गया है।

## अन्य प्रक्रियाएं तथा तकनीकियाँ

विश्व में कीटों की 10000 जातियाँ पायी जाती है जो फसलों को करीब 500 खरब (बिलियन) अमेरिकी डालर का नुकसान पहुँचाती है। अकेले भारत वर्ष में इन कीटों की जातियों द्वारा करीब 45000 करोड़ रुपये का नुकसान होता है। विभिन्न प्रकार के शोधों से साबित हो चुका है कि जैविक खेती को प्रोत्साहित करने के लिए कई समाधानों–जैसे कल्चरल, जैविक, भौतिक एवं वानस्पतिक रसायन को एक कड़ी के रूप में जोडना होगा। साथ ही साथ फसलों की जातियों और प्रजातियों में विविधीकरण को बढ़ाना लाभदायक होगा। दिरांग क्षेत्र में नामसू वैली में एक साथ 7–8 फसलों को बोया जाता है। जैसे मक्का–सोयाबीन–कददू–उड़द–फ्रेंचबीन को एक साथ उगाना। इसी प्रकार जौ व मटर को एक साथ उगाना तथा मक्का एवं फाफड़ा को मृदा की नमी के अनुरूप मिश्रित करके "रिले क्रापिंग के रूप में उगाना।

जैविक खेती को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने भी राष्ट्रीय जैविक खाद्य उत्पादन योजना चलायी है, जो पर्यावरण, आर्थिक लाभ तथा मानव स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर एक मानदंड निर्धारित करती है। ये मानदंड कीटों तथा बीमारियों को पारंपरिक एवं जैविक रूप से नियंत्रित करने के लिए एक प्रणाली को निर्देशित करते

**तालिका 2 : रासायनिक एवं जैविक कीटनाशकों की बाजारीय अवधारणा में अंतर**

| कीट | रासायनिक कीटनाशक | जैविक कीटनाशक |
|---|---|---|
| विपणन क्षमता | बाजार पर पकड़ मजबूत | अपनी पकड़ बढ़ाते हुए |
| जोखिम क्षमता | कम जोखिम | ज्यादा जोखिम |
| सरकारी अवधारणा | बदलने में काफी समय लगेगा | समेकित कीटनाशक प्रबंधन योजना के तहत प्रोत्साहन |
| किसानों की अवधारणा | आसानी से उपयोग करते हुए जारी रखे हुए हैं | इसे एक विकल्प और सहायक कीटनाशक के रूप में उपयोग करते हैं |
| आम जनता का नजरिया | रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग जारी रखने में असहमत | आम जनता स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति सचेत हो रही है |

हैं, इनमें से कुछ मानदंड निम्नलिखित हैं:

- बीमारियों तथा कीड़े–मकोड़ों का नियंत्रण जैविक, पारंपरिक तथा भौतिक रूप से उपलब्ध संसाधनों द्वारा किया जाएगा।
- किसी भी फसल में प्रकोप करने वाले कीटों का नियंत्रण पारिस्थितिकी आवश्यकता के अनुरूप करना होगा।
- फसली कीट तथा उस पर निर्भर रहने वाले परभक्षी की पारिस्थितिकी सामंजस्य को बनाये रखना होगा।
- फसलों में कीटों को नियंत्रित करने वाले पदार्थ तथा क्षेत्रीय पौधों का उपयोग वहाँ की भौगोलिक दशा के अनुरूप होना चाहिए तथा उपलब्धता भी क्षेत्रीय आधार पर सुनिश्चित हो।

रासायनिक कीटनाशकों के प्रदूषण से फसल पारिस्थितिकी तंत्र को बचाने के लिए "राष्ट्रीय जैविक खाद्य उत्पादन योजना" के अंतर्गत निर्देशित किये कुछ सिद्धांत इस प्रकार है:

- जैविक खाद्य पदार्थों का प्रमाणीकरण करते समय एजेंसियों को घातक कीटनाशकों के उच्चतम उपयोग के स्तर को निर्धारित करना होगा।
- मृदा एवं जल में कीटनाशक रसायनों के घातक स्तर को रोकने के लिए एक 'स्तर' निर्धारित करना होगा।

## निष्कर्ष एवं नीति निर्धारण

अरुणाचल प्रदेश तथा अन्य पूर्वोत्तर राज्यों के अलावा देश के अन्य हिस्सों में हमारे किसानों ने जैविक खेती से संबंधित प्राकृतिक कीटनाशक इजाद किए हैं, विभिन्न सस्य प्रक्रियाओं द्वारा कीटों के नियंत्रण करने की तकनीक का विकास किया है और प्राकृतिक परभक्षी, प्रतिरोध तथा ट्रैप पदार्थों को भी अपने कृषि प्रक्षेत्रों पर विकसित किया है। यह अलग बात है कि इन तकनीकियों का अभी तक पूरा वैज्ञानिक तथ्य और उनकी क्षमता का मूल्यांकन नहीं हो पाया है इसलिए इस बात की जरूरत है कि वैज्ञानिक किसानों के साथ हाथ से हाथ मिलाकर सहभागिता के आधार पर उपरोक्त पारंपरिक एवं नवप्रवर्तित तकनीकियों को शोधित करें और उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाएं। साथ ही इन पद्धतियों का मूल्यांकन करके इन्हें अन्य समान कृषि पारिस्थितिकी तंत्र तथा किसानों के लिए अनुमोदित करने की दिशा में आगे बढ़ें।

इस प्रकार किसानों को जैविक कीट नियंत्रण एवं जैविक सस्य प्रक्रियाओं से संबंधित ज्ञान है जो पारिस्थितिकी विशिष्टता और सैंकड़ों वर्षों के अनौपचारिक अनुसंधान का परिणाम है। यहाँ आवश्यकता इस बात की है कि इन तकनीकियों को किस प्रकार संशोधित किया जाए, इनके वैज्ञानिक प्रभाव और तथ्यों का मूल्यांकन किया जाए तथा उनको कृषि पद्धतियों में शामिल किया जाए। यदि इन तकनीकियों को प्रभावी और कारगर बनाना है तो कृषि क्षेत्र की समान सामाजिक एवं पारिस्थितिकी प्रणाली में हम इन्हें प्रसारित करवा सकते हैं।

पूर्व में किये गये शोधों, संदर्भों तथा किसानों के अनुभव के आधार पर हम कह सकतें हैं कि यदि कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को सुरक्षित रखते हुए जैविक कृषि को प्रोत्साहन देना है तो हमें एक समग्र योजना पर विचार ही नहीं, अपितु इसे क्रियान्वित भी करना होगा। हमने यह भी पाया कि हमारे किसानों के पास जैविक खेती को अंगीकरण करने में रूचि है, परन्तु उन्हें सही सलाह, सुलभ तकनीक तथा सरकारी सहयोग के साथ–साथ उनके उत्पादों की बाजार में बिक्री को सुनिश्चित करना होगा।

जैविक खेती आज समाज, पर्यावरण तथा अर्थव्यवस्था की मांग है। परन्तु हमें इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा कि वैश्वीकरण के इस दौर में देश की बढ़ती जनसंख्या तथा पर्यावरण में निरन्तर होते बदलाव के अनुरूप हम जैविक खेती को प्रोत्साहित करें। किसानों को उनकी आवश्यकता तथा भौगोलिक पारिस्थितिकी तंत्र के अनुरूप जैविक कीटनाशक और फफूंदनाशक उपलब्ध हों। ये सामाजिक रूप से किसानों के अनुरूप भी होना चाहिए वरना जैविक खेती मात्र एक सिद्धांत और औपचारिकता बनकर वैज्ञानिकों और नीति निर्धारण के शोध पत्रों में सिमटकर रह जाएगी।

## आभार

लेखक उन सभी अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी तथा मोनपा किसानों का आभार प्रकट करता है जिन्होंने अपने पारंपरिक ज्ञान तथा नवप्रयत्नों को सांझा किया। बागवानी तथा वानिकी महाविद्यालय (केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय) पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश के सहयोग के लिए लेखक अपना आभार प्रकट करता है।

— समाप्त —

# अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना "लवणग्रस्त मृदाओं का प्रबंध एवं खारे जल का कृषि में उपयोग" एक परिचय

रामेश्वर लाल मीणा, सुनील कुमार अम्बष्ट एवं दिनेश कुमार शर्मा
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

इस परियोजना की शुरूआत चौथी पाँच वर्षीय योजना के तहत केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान संस्थान करनाल में की गई थी। सर्वप्रथम इसमें चार केन्द्र आगरा (उत्तर प्रदेश), बापटला (आंध्र प्रदेश), धारवाड़ (कर्नाटक) तथा नागपुर (महाराष्ट्र) सम्मिलित किये गये। इन केन्द्रों को लवणीय जल का अर्धशुष्क क्षेत्रों की हल्की संरचना वाली मिट्टी, शुष्क क्षेत्र की काली मिट्टी, तटीय क्षेत्र तथा मलजल का कृषि में सदुपयोग पर अनुसंधान कार्य करने के लिए चिह्नित किया गया। पाँचवीं पाँच वर्षीय योजना के अंतर्गत भी इन चारों केन्द्रों पर कार्य जारी रखा गया तथा छठी पाँच वर्षीय योजना में चार अन्य केन्द्र क्रमशः कानपुर (उत्तर प्रदेश), इन्दौर (मध्य प्रदेश), जोबनेर व पाली (राजस्थान) को भी इस परियोजना में सम्मिलित किया गया तथा नागपुर केन्द्र को परियोजना से हटा दिया गया। इसी दौरान इस परियोजना का नाम अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना "लवणग्रस्त मृदाओं का प्रबंधन एवं लवणीय जल का कृषि में उपयोग" किया गया। धारवाड़ व जोबनेर केन्द्र को क्रमशः 1989 व 1990 में बीकानेर व गंगावती स्थानांतरित कर दिया गया जहाँ एक बड़ा भू–भाग लवणता की समस्या से ग्रसित था। आठवीं पाँच वर्षीय योजना के दौरान 1995 व 1997 में दो नये केन्द्र हिसार (हरियाणा) व तिरूचिरापल्ली (तमिलनाडू) स्थापित किए गए।

वर्तमान में उपरोक्त 8 केन्द्रों (आगरा, कानपुर, हिसार, बीकानेर, बापटला, गंगावती, इन्दौर तथा तिरूचिरापल्ली) में राज्यों के विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों में अलग–अलग परिस्थितियों में शोध कार्य कर रहे हैं। इन पर किये जा रहे अनुसंधान कार्यों की पारिस्थितिकी विस्तार एवं मुख्य उपलब्धियाँ निम्न प्रकार है।

## अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (ए.आई.सी.आर.पी.) के लक्ष्य और उद्देश्य

- प्रमुख सिंचाई कमाण्ड क्षेत्र में लवणग्रस्त मृदाओं और भूजल की गुणवत्ता का सर्वेक्षण और विशेषताओं का चित्रण।
- मृदाओं और फसलों पर निम्न गुणवत्ता जल का मूल्यांकन।
- सिंचाई हेतु जल की गुणवत्ता के मूल्यांकन के लिये मानकों और दिशा निर्देशों को विकसित करना।
- उच्च लवणता/क्षारीयता और विषैले तत्व युक्त जल के प्रयोग हेतु प्रबंधन पद्धतियों को विकसित करना।
- विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों/प्रमुख सिंचाई कमाण्ड में निम्न गुणवत्ता जल के मिश्रित प्रयोग के लिये तकनीकों का विकास एवं परीक्षण करना।
- लवणीय और क्षारीय परिस्थितियों के अनुरूप फसल और वृक्ष प्रजातियों का परीक्षण करना।

## कृषि में लवणग्रस्त मृदाओं के प्रबंधन और लवणीय जल के उपयोग पर ए.आई.सी.आर.पी. की उपलब्धियाँ

- उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और हरियाणा के कई जिलों के भूजल गुणवत्ता का मूल्यांकन और मानचित्र तैयार किए गए। आंध्र प्रदेश के भूजल गुणवत्ता का मानचित्र भी तैयार किया गया।
- जलोढ़ क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में मुख्य फसल चक्रों के लिए लवणीय जल के प्रयोग करने की सहनशीलता की सीमाओं को स्थापित किया गया।

| क्र.सं. | केन्द्र का नाम | राज्य | शुरू होने का वर्ष | पारिस्थितिकी क्षेत्र व संख्या |
|---|---|---|---|---|
| 1 | राजा बलवंत सिंह कृषि महाविद्यालय, बिचपुरी, आगरा | उत्तर प्रदेश | 1972 | 4–उत्तरी मैदानी क्षेत्र, उष्ण अर्धशुष्क |
| 2 | क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, आचार्य एन.जी. रंगा कृषि विश्वविद्यालय, बापटला | आन्ध्र प्रदेश | 1972 | 18–पूर्वी तटीय क्षेत्र उष्ण अल्पाद्र से अर्धशुष्क |
| 3 | कृषि अनुसंधान केन्द्र, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर | राजस्थान | 1990 | 2–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र उष्ण शुष्क |
| 4 | कृषि अनुसंधान केन्द्र, रायचूर कृषि विश्वविद्यालय, गंगावती | कर्नाटक | 1989 | 6–दक्कन पठार क्षेत्र उष्ण अर्धशुष्क |
| 5 | कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार | हरियाणा | 1995 | 2–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र उष्ण शुष्क |
| 6 | कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, इन्दौर | मध्य प्रदेश | 1980 | 5–मध्य उच्च क्षेत्र |
| 7 | कृषि महाविद्यालय, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर | उत्तर प्रदेश | 1980 | 4–उत्तरी मैदानी क्षेत्र, उष्ण अर्धशुष्क |
| 8 | ए॰डी॰ कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान, तमिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय, तिरूचिरापल्ली | तमिलनाडू | 1997 | 8–पूर्वी घाट तथा तमिलनाडू के उपरी क्षेत्र तथा दक्कन पठार, उष्ण अर्धशुष्क |

- लवणीय सिंचाई के लिये फसल चरणों और प्रजातियों की उपयुक्ता की पहचान की गई।
- लवणीय जल के साथ सीमित नहरी जल के उत्तम प्रयोग के लिये मिश्रित प्रयोग पद्धतियों की पहचान की गई।
- यह तथ्य स्थापित किया गया है कि वर्षा के जल की तुलना में बूँद– बूँद (ड्रिप) सिंचाई में अधिक लवणीय जल का प्रयोग किया जा सकता है।
- समुद्रतटीय रेतीली भूमियों में अच्छी गुणवत्ता का जल निकालने के लिये उपलब्ध दोरूवु तकनीक में सुधार किया गया।
- कृष्णा नदी के पश्चिमी डेल्टा कमाण्ड में जलनिकास के तरीकों और दिशा निर्देशों का विकास किया गया।
- लवण सहनशीलता के लिये विभिन्न फसलों/ प्रजातियों, सुगंधित एवं औषधीय पौधों पर परीक्षण कर उनकी लवण सहनशीलता का आंकलन किया गया।
- लवणीय जल के प्रयोग को बढ़ाने में जैविक खाद की भूमिका की पहचान की गई।
- वर्टिसोल क्षेत्रों में लवणीय जल द्वारा उगाई गई फसलों की लवण सहनशीलता सीमाओं का विकास किया गया।
- नाइट्रोजन के प्रयोग की कुशलता को सुधारने में जैविक खाद की भूमिका की पहचान की गई।
- नहरों में जल रिसाव के नियंत्रण के लिये वृक्ष प्रजातियों की पहचान की गई।
- कपास, धान इत्यादि फसलों की विभिन्न प्रजातियों की लवण सहनशीलता का मूल्यांकन किया गया।
- वर्षा आधारित परिस्थितियों में क्षारीय वर्टिसोल के सुधार के लिये उठे हुए और गहरे बेड पद्धतियों का विकास किया गया।

- डिस्टीलरी स्पेंटवाश की वैकल्पिक क्षारीयता सुधारक के रूप में पहचान की गई और इसके उपयोग से भूमि सुधार तकनीक को विकसित किया गया।
- क्षारीय जल के लिए फास्फोरस के प्रयोग की तकनीक का परीक्षण किया जा रहा है।
- सुधरी हुए क्षारीय मृदाओं के लिये उपयुक्त सब्जी फसलों और उनकी प्रजातियों की पहचान की गई।
- सुधरी हुई क्षारीय मृदाओं के लिये शुन्य जुताई (जीरो टिलेज) तकनीक का परीक्षण एवं विकास किया गया।
- इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना कमाण्ड के लिये भूमिगत जलनिकास का परीक्षण किया गया और दिशा निर्देश तैयार किए गए।
- लवणीय जल और उच्च नाइट्रेटयुक्त जल के मिश्रित प्रयोग की योजना की संस्तुति की गई।

## आगरा केन्द्र

- आगरा, मथुरा तथा राजस्थान के समीपवर्ती क्षेत्रों के भूमिगत जल का वर्गीकरण किया गया।
- लवणीय एवं क्षारीय जल के मिश्रित उपयोग के लिए मौसम अनुकूल/वार्षिक/दीर्घकालिक मॉडल को तैयार किया गया।
- सब्जियों में लवणीय जल के उपयोग के लिए बूँद–बूँद सिंचाई विधि की क्षमता का आंकलन किया गया तथा इस पद्धति में सतही विधि की तुलना में फायदों का निर्धारण किया गया।
- लवणीय मृदा एवं जल के समुचित उपयोग संबंधी कम लागत की सस्य क्रियाओं को अंतिम रूप दिया गया।
- भूजल स्रोत को कम लागत की पुर्नःभरण (रिचार्ज) तकनीक द्वारा उपयोग करने की पद्धति विकसित की गई।
- उच्च सोडियम अधिशोषण अनुपात (एस॰ए॰आर॰) के प्रतिकूल प्रभावों को सतही जलनिकास, सुधारकों के प्रयोग तथा गोबर की खाद द्वारा कम करने की प्रौद्योगिकी विकसित की गई।
- आगरा/भरतपुर क्षेत्र में प्रक्षेत्र अनुसंधान परियोजना (ओ॰आर॰पी॰) के अंतर्गत प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण किया गया।

## बीकानेर केन्द्र

- भूमिगत जल गुणवत्ता का आंकड़ों का संकलन (डेटाबेस) तैयार किया गया तथा जल गुणवत्ता क्षेत्रों के मानचित्र तैयार किये गये।
- क्षेत्र की मुख्य फसलों के लिए फव्वारा सिंचाई विधि द्वारा सिंचाई करने हेतु जल लवणता की सीमाएं निर्धारित की गई।
- जलमग्न लवणीय भूमियों के प्रबंधन के लिए भूमिगत जलनिकास तकनीक का विकास एवं उपयोग प्रदर्शन किये गये।
- उच्च अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आर॰एस॰सी॰) वाले जल को फव्वारा सिंचाई विधि द्वारा उपयोग करने की तकनीकी विकसित की गई।
- बूँद–बूँद सिंचाई विधि द्वारा सिंचाई करने पर सब्जियों की लवण सहनशीलता का आंकलन किया गया।
- बूँद–बूँद सिंचाई एवं सतही सिंचाई विधि द्वारा कपास/सरसों की लवण सहनशील किस्मों की पहचान की गई।
- बेर में लवणीय जल की बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति की समय सारणी तैयार की गई।
- नागौर तहसील में पाये जाने वाले फ्लोराइड युक्त जल का डाटा बनाया गया।

## बापटला केन्द्र

- आन्ध्र प्रदेश के भूमिगत जल की गुणवत्ता का मानचित्र तैयार किया गया तथा चिन्हित स्थानों का आंकलन किया गया।
- बेहतर दोरूवु तकनीकी किसानों को उपलब्ध करवाई गई।
- कृष्णा नदी के पश्चिम डेल्टा में भूमिगत जल निकास तंत्र की क्षमता को जांचा व विकसित किया गया।
- अनुपयुक्त मछली के तालाबों का सुधार किया गया।

- काली क्षारीय मृदाओं की सुधार तकनीक का विकास किया गया।
- उच्च अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट (आर.एस.पी.) जल के उत्तम प्रबंधन का विकास किया गया।
- बूँद–बूँद सिंचाई विधि द्वारा सिंचाई करने पर सब्जियों में लवण सहनशीलता परखी गई।

## गंगावती केन्द्र

- कर्नाटक में भूमिगत जल गुणवत्ता का सर्वेक्षण किया गया।
- भूजल के बढ़ते जल स्तर की रोकथाम के लिए जल प्रबंधन कार्यक्रम विकसित किया गया।
- भूमिगत जलनिकास तकनीक को समस्याग्रस्त क्षेत्रों में उपलब्ध कराया गया तथा प्रदर्शित किया गया।
- पेड़ पौधों द्वारा जलनिकास (बायोड्रेनेज) की व्यवस्था का आंकलन किया गया।
- टाइड रिज द्वारा खेत का पानी खेत में तकनीक के अंतर्गत वर्षाजल का संरक्षण करके क्षारीय भूमियों का वर्षा आधारित सुधार किया गया।
- सुगन्धित एवं औषधीय फसलों में लवण सहनशीलता की जांच की गई।

## हिसार केन्द्र

- हरियाणा के चार जिलों में भूमिगत जल गुणवत्ता का सर्वेक्षण पूरा किया गया।
- विभिन्न फसलों गेहूँ, कपास, सरसों, जई एवं ज्वार की क्रमशः 60, 31, 23, 24, व 11 प्रजातियों की लवण सहनशीलता की जांच की गई।
- क्षारीय जल को गोबर की खाद तथा 100 प्रतिशत जिप्सम द्वारा अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट का निम्नीकरण करके सब्जियों की सफल उत्पादन तकनीक का विकास किया गया।
- गोबर की खाद तथा जिप्सम की समेकित उपयोग विधि का क्षारीय जल से सिंचित फसलों की गुणवत्ता पर आंकलन कर सिद्ध किया गया कि इससे फसल गुणवत्ता में अत्याधिक सुधार होता है।
- यह सिद्ध किया गया कि क्षारीय जल को फव्वारा सिंचाई विधि से देने पर उपज में सार्थक वृद्धि होती है जो सिंचाई की गहराई तथा जिप्सम के उपयोग के साथ अधिक बढ़ती जाती है।
- प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए क्षारीय जल का सुधार तथा फसलों में उपयोग के प्रदर्शन किसानों के खेतों पर लगाये गये। संस्थान द्वारा विकसित लवण सहनशील गेहूँ तथा सरसों की प्रजातियों के भी इन परिस्थितियों में प्रदर्शन लगाये गये।

## इन्दौर केन्द्र

- दूर संवेदी (रिमोट सेंसिंग) द्वारा उत्तरी मध्य प्रदेश के 5 जिलों में लवण प्रभावित 1.05 लाख हैक्टर क्षेत्र चिह्नित कर नक्शे बनाये गये।
- दतिया, ग्वालियर, मुरैना, श्योपुर, भिंड तथा मंदसौर जिलों का भूमिगत जल गुणवत्ता का सर्वेक्षण पूरा किया गया तथा नक्शे तैयार किये गये।
- क्षारीय मृदाओं का डिस्टीलरी स्पेन्टवॉश द्वारा सुधार के प्रदर्शन लगाये गये।
- काली क्षारीय मृदाओं के सुधार के लिये उठी व गहरी (रेजड व सनकन) क्यारी प्रणाली (1:1 क्यारी जो 7.5 मीटर चौड़ी है) की उपयुक्तता का आंकलन किया गया तथा यह स्थापित किया गया कि इस प्रणाली द्वारा 50 प्रतिशत जल, 95 प्रतिशत मृदा एवं 90 प्रतिशत पोषक तत्व संरक्षित होते हैं तथा 5 वर्षों के आंकलन के आधार पर आय–व्यय का अनुपात 1.96 रहा।
- क्षारीय वातावरण में फल वाले पेड़ों में एम्बेडेड पाइप द्वारा सिंचाई के लिये पाईप के आकार का आंकलन करके यह स्थापित किया गया कि 100 मि.मी. व्यास तथा 40 सेंमी. गहराई उपयुक्त है।
- 3–4 वर्षों तक मारवेल, पैरा घास तथा करनाल घास लगाने पर ई.एस.पी. 15–20 तक कम होती है तथा इससे 10–12 टन प्रति हैक्टर जिप्सम की बचत होती है।
- क्षारीय वातावरण के लिये नीम तथा विलायती बबूल उपयुक्त वृक्ष है।

- यह स्थापित किया गया कि काली मिट्टी में ई॰एस॰पी॰ 10 की सीमा से अधिक होने पर मृदा के भौतिक गुण बिगड़ने शुरू हो जाते हैं।
- पाइराइट के पाउडर को भूमि की सतह पर छिड़कने से मिट्टी की नमी स्थिर करने की क्षमता एक सप्ताह से भी ज्यादा समय तक बनाये रखने में मदद मिलती है, साथ ही क्षारीय वर्टीसोल मृदाओं के सुधार के लिये निक्षालन भी प्रभावी है।
- दूषित जल के वर्गीकरण तथा प्रबंधन की तकनीक विकसित की गई।

## कानपुर केन्द्र

- 15 सेंमी. जिप्सम की क्यारी से उच्च आर॰एस॰सी॰ के जल को गुजार कर पानी का उपयोग करने की संभावना स्थापित की गई।
- क्षारीय परिस्थितियों के लिये सब्जियों की संकर किस्मों तथा सरसों की किस्मों का चयन किया गया।
- उन्नाव, कानपुर व फतेहपुर जिलों का भूमिगत जल सर्वेक्षण किया गया।

## तिरूचिरापल्ली केन्द्र

- तमिलनाडू का जल गुणवत्ता नक्शा तैयार किया गया।
- तिरूचिरापल्ली जिले की लवण प्रभावित मृदा का नक्शा बनाया गया।
- फसलों व सब्जियों की लवण सहनशीलता सीमाएं जांची गई
- डिस्टीलरी स्पेन्टवॉश द्वारा क्षारीय मृदा सुधार तकनीक विकसित की गई तथा प्रदर्शित की गई।
- क्षारीय मृदाओं के लिये वर्षा आधारित वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली विकसित की गई।
- क्षारीय मृदाओं में सुधारे गये क्षारीय जल का बूँद–बूँद पद्धति द्वारा सब्जियों में उपयोग की तकनीक का विकास किया गया।
- सुनामी प्रभावित भूमि व जल संसाधनों का आंकलन किया गया।

**– समाप्त –**

महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल करने के लिए संभावना नहीं होने के बावजूद प्रयास जारी रखना चाहिए।

# राजभाषा हिंदी – एक अवलोकन

रामेश्वर लाल मीणा एवं राजेन्द्र कुमार यादव
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितम्बर, 1949 को स्वीकार किया गया। इसके बाद संविधान में राजभाषा के सम्बन्ध में धारा 343 से 352 तक की व्यवस्था की गयी। धारा 343 (1) के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी एवं लिपि देवनागरी है, इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिये 14 सितम्बर का दिन प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है तथा हिंदी पखवाडा सितंबर के महीने में मनाया जाता है।

विश्व हिंदी दिवस प्रति वर्ष 10 जनवरी को मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व में हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिये जागरूकता पैदा करना तथा हिंदी को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में पेश करना है। विदेशों में भारत के दूतावास इस दिन को विशेष रूप से मनाते हैं। सभी सरकारी कार्यालयों में विभिन्न विषयों पर हिंदी में व्याख्यान आयोजित किये जाते हैं। विश्व में हिंदी का विकास करने और इसे प्रचारित – प्रसारित करने के उद्देश्य से विश्व हिंदी सम्मेलनों की शुरुआत की गई और प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में आयोजित हुआ था इसीलिए इस दिन को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है ।

भारत के प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने 10 जनवरी 2006 को प्रति वर्ष विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाये जाने की घोषणा की थी। उसके बाद से भारतीय विदेश मंत्रालय ने विदेश में 10 जनवरी 2006 को पहली बार विश्व हिंदी दिवस मनाया था।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिंदी की मांग जिस तेजी से बढी है वैसी किसी और भाषा की नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैंकडों छोटे–बडे केन्द्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों से 25 से अधिक पत्र–पत्रिकाएं लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं।

संख्या के आधार पर 1952 में हिंदी विश्व में पाँचवें स्थान पर थी। 1980 के आसपास वह चीनी और अंग्रेजी के बाद तीसरे स्थान पर आ गई थी। अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिंदी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिंदी भाषा से अधिक है किंतु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा अधिक है किंतु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है। मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में चीनी भाषा के बाद हिंदी के बोलने वाले सर्वाधिक है।

हिंदी का एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में संवर्धन करने और विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना का निर्णय लिया गया। विश्व हिंदी सचिवालय ने 11 फरवरी 2008 से औपचारिक रूप से कार्य करना आरंभ कर दिया।

*हमने जब से हिंदी को, हमारा बना दिया,*
*हिंदी को धारा का एक, किनारा बना दिया।*

*दुनिया सिमट रही है, एक गाँव की तरह,*
*हिंदी को भावों का, एक ईशारा बना दिया।।*

बस ऐसे ही चलती है हिंदी, कभी हिंदी चित्रपट पर, कभी दूरदर्शन के चैनलों पर, कभी गीत–गजलों में, कभी बाजार से सामान्य खरीद्दारी आदि में। हिंदी विशेषकर इसी रूप में हमारी है और हमें इसके इसी रूप पर नाज भी है। दुनिया के उन्नत देशों की भाषाएँ अपनी लोकप्रियता बनाए रखते हुए सरकारी कामकाज, उच्च शिक्षा, प्रौद्योगिकी आदि में अपनी प्रगति और लोकप्रियता को बनाए हुए है। परन्तु क्या हिंदी इस रूप में आज हमारे सामने है? जिस हिंदी को हम अपनी हिंदी के रूप में अपनाए हुए हैं क्या उसका अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप है? अन्तर्राष्ट्रीय ना सही क्या वर्तमान

में हिंदी का एक सशक्त राष्ट्रीय स्वरूप है? हमने हिंदी को गाने–बजाने और दुकानों तक ही समेट कर रख दिया है। अब भी भारतीय कार्यालयों के टेबल अंग्रेजी से ही जुड़े हुए हैं और हमारी आदतें भी। दैनिक समाचार पत्र हो, एसएमएस हो, किसी लिफाफे पर पता लिखना हो अथवा छुट्टी की अर्जी देनी हो, हमेशा अंग्रेजी ही लिखी जाती है। लिखते वक्त हमारी हिंदी ना जाने कितनी दूर होती है और अंग्रेजी अपनी लगती है।

वर्तमान में हम एक विडंबना में जी रहे हैं। हमारे दिल में हिंदी है और व्यवहार में अंग्रेजी। हिंदी जहाँ अहसासों को सुखद बनाती है वहीं अंग्रेजी व्यावहारिक जगत में एक आत्मविश्वास के साथ चलने का आधार प्रदान करती लगती है। यह व्यावहारिकता भारतीय परिवेश पर बरसाती बादलों की तरह छाई हुई है और अक्सर बरसते रहती है। अक्सर बरसते रहने से तात्पर्य है कि जहाँ भी हम उच्च स्तर पर आयोजित कार्यक्रमों में जाएं तो वहाँ पर अंग्रेजी की फुहारों से भींगना ही पड़ता है। शायद हम इस बारिश के अभ्यस्त भी हो गए हैं। इसे सहजता से लेते हैं। इसका विरोध करना अब हमें अस्वाभाविक प्रक्रिया लगती है। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि विरोध क्यों? वसुधैव कुटुम्बकम के सिद्धांतों पर चलने वाला हमारा देश भला विरोध क्यों करे? जो भी हमारे यहाँ आता है उसे हम अपना बना लेते हैं। यह एक तरह से हमारे विशाल हृदय को दर्शाता है जबकि दूसरी ओर यह भी संभावना प्रकट करता है कि कहीं इस विशालता में हम अपना कुछ खो तो नहीं रहे। अंग्रेजी को अपनाते हुए कहीं हम हमारी अपनी भाषा हिंदी को खो तो नहीं रहे। कुछ खो कर कुछ पाना हमेशा स्वीकार्य नहीं होता।

व्यवहार के लिए एक भाषा होनी चाहिए। भाषा की भूमिका तो यहीं तक है। गाने–बजाने तथा दुकानों तक तो हिंदी है ना! तो क्या यह एक सुखद स्थिति नहीं है? भारतीय दिलों में तो हिंदी है ना! तो क्या यह संतोषप्रद स्थिति नहीं है? क्यों अंग्रेजी के पीछे पड़ा जा रहा है। यह देखने की कोशिश क्यों नहीं की जाती कि कहीं हिंदी की कमजोरी की वजह से तो अंग्रेजी आगे नहीं निकल गई? वर्तमान में विश्व जब एक कुटुंब की तरह होते जा रहा है तो क्या ऐसी स्थिति में हमारी कोई एक राष्ट्रभाषा नहीं होनी चाहिए।

हमारी हिंदी सिर्फ देवनागरी में लिखी जाने वाली हिंदी ही नहीं है बल्कि भारत की विभिन्न भाषाओं के आपसी ताल–मेल का प्रतीक है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की ध्वजवाहिका है जिसके संग भारत की अन्य भाषाएं भी हैं। हिंदी का विकास सभी भारतीय भाषाओं का विकास है। समूचे राष्ट्र की धड़कनों को एक सूत्र में बांधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है और हमारी हिंदी इसमें सक्षम है। हमारी हिंदी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तब तक पूरी हमारी नहीं हो सकती जब तक भारत की सभी भाषाओं को विकास के समान अवसर नहीं मिलते। इतने प्रयासों के बावजूद भी जब हिंदी हमारी टेबल का रोज का हिस्सा नहीं बन सकी है तब अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक इसे ले जाने की तमन्ना एक ख्वाब सा लगता है। कार्यालयों में कार्य करने वाले अधिकांश कर्मचारी कार्यालय के दूसरे कर्मचारियों का अनुकरण करते हैं। लोग अंग्रेजी का प्रयोग कर रहे हैं इसलिए हम भी अंग्रेजी का प्रयोग करेंगे। कल से हिंदी का प्रयोग करने लगें तो टेबल का सारा काम हिंदी में ही होगा। समस्या मानसिकता की है।

कहीं ना कहीं से हमें किसी भारतीय भाषा को संग लेकर आरम्भ करना पड़ेगा। राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को देश की राजभाषा का दर्जा मिल चुका है परन्तु उसका विकास करना हम सब भारतीय नागरिकों का दायित्व है। हिंदी का विकास देश की सभी भाषाओं का विकास है। वर्तमान में प्रत्येक कार्यालय में हिंदी या राजभाषा, के विपुल साहित्य पड़े हैं जिनका पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा है। प्रत्येक कार्यालय हिंदी के छोटे से पत्र के लिए भी कार्यालय के हिंदी विभाग या राजभाषा विभाग की और देखता है। हमारी हिंदी आज कार्यालयों में हिंदी विभाग पर टिकी हुई है यह कहना कोई गलत नहीं होगा। भाषा को दृष्टिगत रखते हुए जब तक हम नहीं जागेंगे तब तक कार्यालय नहीं जगेगा, जब तक कार्यालय नहीं जगेगा तब तक समाज नहीं जगेगा और जब तक समाज नहीं जगेगा तब तक देश का प्रतिनिधित्व करनेवाली हमारी भाषा हिंदी और सशक्त नहीं होगी। अतएव हमारी हिंदी हमारे ही हाथों में है। हमारे हाथों से विकसित हुई हिंदी विश्वपटल पर जाए इसके लिए भागीरथी प्रयास अपेक्षित है।

संस्कृत की उत्तराधिकारी होने और विभिन्न बोलियों के करीब होने के कारण सर्वग्राह्यता, सार्वभौमिकता, और निरंतर प्रगतिशीलता हिंदी का स्वाभाविक गुण है।

आज 67 वर्ष बीत जाने के बाद भी हिंदी गरिमामय होने के वावजूद अपनी गरिमा के लिये संघर्ष कर रही है। निकट भविष्य में भी सम्भवतः ऐसी स्थिति में ही नजर आती रहेगी। आज वह समय आ गया है कि अब हमें थोडा रुककर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। हमें फिर से ईमानदारी से उन प्रभावी कारणों पर सोचना होगा जिनके कारण जन की भाषा जनतंत्र की भाषा के रूप में प्रभावशाली ढंग से स्थापित नहीं हो पा रही है।

आज लोगों की मानसिकता और सोच सीमित होती जा रही है। व्यक्तिगत विकास और चकाचौंध कर देने वाले साधनों को प्राप्त करने की अंधाधुंध दौड़ इतनी महत्वपूर्ण हो गई है कि रिश्ते–नाते, सामाजिक संरचना यहाँ तक की माँ–बाप और बच्चे भी महत्वपूर्ण नहीं लगते। ऐसे में देश और उसमें भी राजभाषा हिंदी के विषय में कुछ भी कहना समय की उपयोगिता को नष्ट करना लगता है। परंतु फिर भी यदि झकझोर कर, समझाकर हिंदी की बात कर भी ली जाय तो अचानक ही हमारा मातृभाषा प्रेम अंगडाई लेने लगता है। हिंदी के रूप में मातृभाषा पर संकट के बादल घिरते नजर आने लगते हैं। अचानक ही मातृभाषा प्रेम हिंदी विरोध का रूप ले लेता है। गौर से देखा जाय तो स्थिति ऐसी लगती है जैसे कि मधुर गहरी नींद में सुखद सपनों में खोये आदमी को अचानक से उठा दिया गया है और उसे समझ में नहीं आ रहा है कि आस–पास क्या चल रहा है। बात तो वही हुई कि डॉट कार्यालय में पड़ी और घर आ कर पत्नी से लड़ लिये या बच्चे को पीट लिया। अरे ! हमारी मातृभाषा को अंग्रेजी नष्ट किये जाती है और डर हमको हिंदी से लगता है। अब इससे बड़ी विडम्बना भला हिंदी के लिये और क्या हो सकती है।

भारत का नागरिक होने के कारण भारतीय संविधान से बाहर कुछ भी करना इसका अनादर करना होगा अतः जो भी और जितनी भी व्यवस्था राजभाषा के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधानों में किया गया है हमें उस दायरे में रह कर ही राजभाषा के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना होगा।

अगर राजभाषा नीति की बात करें तो देखने से कभी–कभी सन्देह भी उत्पन्न होने लगता है कि क्या वाकई हिंदी ही हमारी राजभाषा है? पर तुरंत ही अनुच्छेद 343 (1) की याद हमारे मन को सचेत कर देती है कि हिंदी ही हमारी राजभाषा है। हम सभी को अपनी इस मनोस्थिति से निकलने की जरुरत है और हिंदी में कार्य करने की जो भी संभावनाएँ अपने स्तर पर दिखती है उसे अपने कार्य का हिस्सा मान कर करने की जरूरत है। अंग्रेजी के जौहर दिखाने के अनगिनत मौके और द्वार बिन माँगे भी मिलेंगे अतः अंग्रेजी के लिये निराश होने की जरूरत कतई प्रासंगिक नहीं है।

भारत के नागरिक होने के नाते राजभाषा नीति और संवैधानिक प्रावधान जितना भी कार्य हमें हिंदी भाषा में सौंपते हैं उसे करना हमारा कार्य और दायित्व है बिल्कुल वैसे ही जैसे हमारे तकनीकी कार्य या प्रशासनिक कार्य, हम उनसे अपना मुँह नहीं मोड़ सकते।

निश्चित ही अंग्रेजी अपने वैश्विक प्रभाव और कतिपय विशिष्ट गुणों के कारण काफी प्रभावी भाषा है। आज 67 वर्षों में भारत के विकास में सहयोगी रही है और उसके अमूल्य योगदान को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते। किंतु हमें सहायक और शासक के अंतर को समझना होगा। हमें सहयोगियों से इंकार नहीं है पर उनका महत्व तभी तक है जब तक वो सहयोगी हों। साधन कभी भी साध्य नहीं हो सकता और यदि साध्य साधनों में फँस जाये तो यह तय है कि पतन निकट ही है।

अतः हमें अपने संवैधानिक दायरों में रहते हुए, जितना भी संभव हो सके, हिंदी को उपयोग में लाने की दिशा में ईमानदारी से और अधिक प्रयास करने होंगे तथा हमारी प्रौद्योगिकी, तकनीकी को राजभाषा हिंदी के माध्यम से आम आदमी तक पहुँचाने के लिए हिंदी में प्रकाशन कर अपना कर्तव्य निभाना होगा।

**– समाप्त –**

कोई भी राष्ट्र अपनी भाषा को छोड़कर, राष्ट्र नहीं कहला सकता है।

# कविताएँ

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
1969
CSSRI

# नव वर्ष मंगलमय हो

कवि अवध बिहारी "अवध"
ग्राम – चक चौकी, डाकघर–चौकी, जिला–सोनभद्र (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल : 09794201708

जीवन रूपी बगिया में सुरभित सद्ज्ञान हो ।
नव वर्ष मंगलमय हो। नूतन वर्ष महान हो ।।

अलौकिक हर दिवस, संध्या, रात्रि, हर भोर हो।
जीवन में सुमधुर सम्बन्धों की बंधी डोर हो।।
सद्ज्ञान रूपी सुरभि महक रही चहुँओर हो।
अनुपम आनन्द से हर जीवन सराभोर हो।।

खिलें कल्याणमय कुसुम, जन–जन का उत्थान हो।
नव वर्ष मंगलमय हो। नूतन वर्ष महान हो।।

सत्य, शान्ति, सदाचारमय सुन्दर उजियारा हो।
बह रही प्रेम रूपी पियूष धारा हो।।
खिल रहा पुण्य, परोपकारमय पुष्प प्यारा हो।
सुन्दर सद्गुणों से सुगन्धमय जीवन सारा हो।।

हर पल उल्लासमयी, मुख पर मधु मुस्कान हो।
नव वर्ष मंगलमय हो। नूतन वर्ष महान हो।।

बह रही विश्व बन्धुत्व रूपी अमृत रसधारा हो।
अहिंसा की अलौकिकता का सर्वत्र मुन्जार हो।।
बहे सुख की सुरसरि, सुखी सकल संसार हो।
प्रभु कृपा करो अनुपम "अवध" स्वप्न साकार हो।

ज्ञान आलोक से आलोकित अखिल स्थान हो।
नव वर्ष मंगलमय हो। नूतन वर्ष महान हो।।

# स्वर्ग समान गऊंआँ

कवि अवध बिहारी "अवध"
ग्राम – चक चौकी, डाकघर–चौकी, जिला–सोनभद्र (उत्तर प्रदेश)

गऊंओं से सुघर हिन्दुस्तान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

सुघर सलोना हरा–भरा उद्यान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

बड़ा निक कुँह–कुँह कोथलिया के तान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

भौरों के मधुर–मधुर गुन्जित गान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

खेतवा में मोती जैसे– गेहूँ, जौ, धान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

जहवाँ बसन्त बहार ऋतुअन के शान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

किसनवा ए ही से विष्णु भगवान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

बिखरे चाँदनी, निराला नीला आसमान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

हियरा में बसल गऊंआँ "अवध" के परान लागे।
हमार गऊंआँ स्वर्ग समान लागे।।

खेतवन में खेती–बारी करेला किसनवा।
उपजावेला गेहूँ, जौ, मक्का और धनवा।।

जहवाँ जीवन में नेहिया के लागल बाडोर हो।
सुख–शान्ति भरल होले सन्ध्या और भोर हो।।

कल–कल बहे नदिया, झर–झर झरे झरना।
हरी –भरी धरतिया लागे मन हरना।।

जहवाँ खिलेंलें सुन्दर–सुन्दर सुमनवा।
देखी – देखी हरषित होला मनवा।।

जहवाँ बाट हरे–भरे पेड़वन के छाँव हो।
नदिया में चलेले नित नाव हो।।

तनवा से टप–टप टपकेला पसीनवा।
परिश्रम के मोती उपजावेला किसनवा।।

चह–चह चिरइया, नाचेला मोरवा।
शीतल, मन्द,सुगन्ध बयरिया बहेला भोरवा।।

हमारे गऊंआँ के महिमा बा बड़ी भारी।
पार नहीं पावेला आकिंचन "अवधबिहारी"।।

# राजभाषा
# कार्यक्रम

# संस्थान के कृषि अनुसंधान में राजभाषा हिंदी

रामेश्वर लाल मीणा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं सुनील कुमार त्यागी
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि अनुसंधान में राजभाषा हिंदी को प्रोत्साहित करने हेतु केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान अनेक गतिविधियाँ आयोजित करता है। कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों का विवरण निम्नांकित है।

## हिंदी पखवाड़े का आयोजन

राजभाषा कार्यान्वयन को वांछित गति प्रदान करने और अधिकारियों/कर्मचारियों में हिंदी में कार्य करने के प्रति जागरूकता का सृजन करने के लिए केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल में 1 से 14 सितम्बर, 2011 तक हिंदी पखवाडे का आयोजन किया गया। हिंदी पखवाड़े का उद्घाटन 1 सितम्बर, 2011 को दीप प्रज्वलन एवं सरस्वती वंदना के साथ किया गया। इस अवसर पर संस्थान राजभाषा हिंदी इकाई के अध्यक्ष डा॰ राम शंकर त्रिपाठी ने हिंदी पखवाड़े के आयोजन का उद्देश्य एवं हिंदी पखवाड़े के कार्यक्रमों का ब्यौरा प्रस्तुत किया। माननीय शरद पवार, केन्द्रीय कृषि उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्री भारत सरकार तथा महानिदेशक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रेषित संदेश पढ़कर सुनाये गये। कृषि अनुसंधान में राजभाषा हिंदी को प्रोत्साहित करने के लिए हिंदी पखवाड़े के दौरान 9 प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें प्रश्नोत्तरी, निबंध लेखन, कम्प्यूटर पर हिंदी टाइपिंग, टिप्पणी एवं मसौदा लेखन, आवेदन पत्र लेखन, तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी, तत्काल भाषण इत्यादि सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त राजभाषा में मूल हिंदी में कार्य का भी अवलोकन किया गया जिसमें नकद राशि प्रोत्साहन के रूप में प्रदान की जाती है। हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए संस्थान के विभागों में हिंदी में किये गये कार्य का आंकलन करके चल वैजयंती पुरस्कार प्रदान किया गया। सभी प्रतियोगिताओं में बड़ी संख्या में अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया।

हिंदी पखवाड़े के समापन के अवसर पर 14 सितम्बर, 2011 को डा॰ बी॰के॰ जोशी, निदेशक, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल ने समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में शिरकत की तथा अपने संबोधन में कहा कि हमें हिंदी का अधिकाधिक उपयोग करते हुये वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी को हिंदी में प्रकाशित करना चाहिए। हिंदी एक सशक्त भाषा है जिसमें अभिव्यक्ति की महत्वपूर्ण क्षमता है। उन्होंने सलाह दी कि हमें हिंदी चेतना दिवस व हिंदी पखवाड़ा नियमित रूप से मनाना चाहिए। उन्होंने संस्थान के वैज्ञानिकों की पोस्टर प्रदर्शनी भी देखी और कृषि अनुसंधान में हिंदी को बढ़ावा देने के संस्थान के प्रयासों की सराहना की। समापन समारोह के अध्यक्षीय भाषण में संस्थान के निदेशक

*डा॰ बी॰के॰ जोशी, निदेशक, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल संस्थान के कर्मचारियों को सम्बोधित करते हुए*

डा॰ दिनेश कुमार शर्मा ने पखवाड़े के दौरान विजेताओं को बधाई दी तथा सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से अपील की कि संस्थान किसानों के लिए काम करता है इसलिए किसानों तथा जन सामान्य की भाषा हिंदी में अधिक से अधिक लेखों को प्रकाशित किया जाना चाहिए।

मुख्य अतिथि ने इस अवसर पर विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजताओं को पारितोषिक प्रदान किये तथा चल वैजयंती पुरस्कार संस्थान के स्थापना अनुभाग–दो को वर्ष में सर्वाधिक काम हिंदी में करने के लिए प्रदान किया गया। अंत में सभी प्रभागों, प्रशासन, प्रेस मीडिया तथा हिंदी पखवाड़े में सहयोग करने वाले अधिकारी व कर्मचारियों को धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

## हिंदी में तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी

संस्थान में 13 सितम्बर, 2011 को हिंदी भाषा के माध्यम से तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता आयोजित की गई। दिनांक 14 सितम्बर, 2011 को हिंदी पखवाड़े के समापन के अवसर पर इन पोस्टरों का मूल्यांकन किया गया। मुख्य अतिथि डा॰ बी॰के॰ जोशी ने संस्थान में हो

*डा॰ बी॰के॰ जोशी, निदेशक, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल एवं संस्थान के निदेशक डा॰ डी॰ के॰ शर्मा पोस्टर प्रतियोगिता का अवलोकन करते हुए*

रहे शोध कार्यों तथा पोस्टरों के रूप में उनके प्रदर्शन की सराहना की। प्रतियोगिता में निम्नांकित कृषि तकनीकों पर पोस्टर प्रदर्शित किए गए।

- **क्षारीय अथवा लवणीय मृदा की पहचान कैसे करें?**
  –आर॰के॰ सिंह, कुलदीप सिंह एवं टेकराम शर्मा
- **लवणीय भूमि सुधार का आर्थिक परिदृश्य**
  –रामशंकर त्रिपाठी, आर॰ राजू एवं अनिल कुमार शर्मा

### हिंदी पखवाड़ा के अंतर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं के परिणाम

| क्रम संख्या | प्रतियोगिताओं के नाम | विजेताओं के नाम | | |
|---|---|---|---|---|
| | | प्रथम | द्वितीय | तृतीय |
| 1. | प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता | श्री अनिल कुमार शर्मा | डा॰ मोहन लाल | श्री सुनील कुमार सिंह |
| 2. | निबंध लेखन प्रतियोगिता | श्री नरेन्द्र कुमार वैद्य | श्री एस॰के॰ गोयल | श्रीमती अनिता मेहता |
| 3. | कम्प्यूटर हिंदी टाइपिंग प्रतियोगिता | श्रीमती वीरा रानी | श्री रणजीत सिंह | श्रीमती दिनेश गुगनानी |
| 4. | टिप्पणी एवं मसौदा लेखन प्रतियोगिता | श्री सुरेश कुमार गोयल | श्री अनिल कुमार शर्मा | श्री नरेन्द्र कुमार वैद्य |
| 5. | आवेदन पत्र लेखन (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों हेतु) | श्री इन्द्र पाल सिंह | श्री दिलीप सिंह | श्री देशराज शर्मा |
| 6. | पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता | डा॰ शरद कुमार सिंह | डा॰ रवि शंकर पांडे | डा॰ रणबीर सिंह एवं डा॰ रामशंकर त्रिपाठी |
| 7. | तत्काल भाषण प्रतियोगिता | डा॰ शरद कुमार सिंह | डा॰ रामशंकर त्रिपाठी | श्रीमती अनिता मेहता एवं डा॰ प्रदीप डे |
| 8 | राजभाषा पुरस्कार योजना प्रतियोगिता | श्रीमती सुषमा गर्ग श्रीमती जसबीर कौर | श्री रणजीत सिंह श्री जोगध्यान श्री सुरेश गोयल | श्री भगवान दास श्रीमती अनीता मेहता श्री जसबीर सिंह श्री गुरचरण सिंह श्री राममुरत राय |
| 9 | चल वैजयंती पुरस्कार | स्थापना–दो अनुभाग | – | – |

- **लवणीय भूमि सुधार के सामाजिक आर्थिक लाभ**
  –रामशंकर त्रिपाठी, आर॰ राजू एवं अनिल कुमार शर्मा
- **क्षारीय भूमि सुधार का आर्थिक परिदृश्य**
  –रामशंकर त्रिपाठी, के॰ थिम्पप्पा एवं सुनील कुमार त्यागी
- **क्षारीय भूमि सुधार के सामाजिक आर्थिक लाभ**
  –रामशंकर त्रिपाठी, के॰ थिम्पप्पा एवं सुनील कुमार त्यागी
- **गेहूँ की नवीनतम चिह्नित लवण रोधी किस्मों के विशेष गुण एवं इनके कारण में प्रयुक्त विधियाँ**
  –नीरज कुलश्रेष्ठ, के॰एन॰ सिंह, एस॰के॰ शर्मा एवं गुरबचन सिंह
- **क्षारीय भूमि की जल कृषि हेतु उत्पादक उपयोगिता**
  –शरद कुमार सिंह
- **टपकदार सिंचाई पद्धति द्वारा मलजल का उपयोग उलट दाब पर अनुसंधान**
  –रवि शंकर पांडे
- **सुधरी ऊसर भूमि में गेहूँ की तर्ज पर धान की सीधी बीजाई**
  –रणबीर सिंह, एस॰के॰ चौधरी, प्रदीप डे, एस॰के॰ शर्मा, पी॰के॰ जोशी, आर॰एस॰ त्रिपाठी एव डी॰के॰ शर्मा
- **लवणीय जलग्रस्त भूमियों का सुधार एवं उसके लाभ**
  –रामशंकर त्रिपाठी
- **क्षारीय भूमि सुधार एवं उससे होने वाले सामाजिक आर्थिक लाभ**
  –रामशंकर त्रिपाठी

पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता के पोस्टर मूल्यांकन के उपरांत क्षारीय भूमि की जल कृषि हेतु उत्पादक उपयोगिता पर पोस्टर के लिए डा॰ शरद कुमार सिंह को प्रथम, टपकदार सिंचाई पद्वति द्वारा मलजल का उपयोग उलट दाब पर अनुसंधान पर डा॰ रवि शंकर पांडे को द्वितीय और सुधरी ऊसर भूमि में गेहूँ की तर्ज पर धान की सीधी बीजाई पर डा॰ रणबीर सिंह को तृतीय पुरस्कार प्रदान किया गया। संस्थान के निदेशक ने पोस्टर द्वारा तकनीकी प्रदर्शन को एक महत्वपूर्ण तकनीकी हस्तांतरण का माध्यम बताते हुये प्रतियोगिता में भाग लेने वाले वैज्ञानिकों की प्रशंसा की तथा विजेताओं को बधाई दी।

## पाँच दिवसीय हिंदी अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

दिनांक 19 से 23 सितम्बर 2011 के दौरान वैज्ञानिकों, तकनीकी तथा प्रशासनिक अधिकारियों के लिए केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो नई दिल्ली के सहयोग से संक्षिप्त अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किया गया। इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में संस्थान तथा परिषद के करनाल स्थित संस्थानों व नराकास के सदस्य कार्यालयों से कुल 24 वैज्ञानिकों व अधिकारियों ने भाग लिया। पाठ्यक्रम में भारत सरकार की राजभाषा नीति और अनुवाद की व्यवस्था, अनुवाद के सिद्धान्त, हिंदी वर्तनी का मानकीकरण, कार्यालय की भाषा का स्वरूप, अनेकार्थी शब्दों के अनुवाद की समस्या, पारिभाषिक शब्दावली, प्रशासनिक अभिव्यक्तियाँ आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई। हिंदी में काम करने की झिझक दूर करने के लिए कराए गए इस पाठ्यक्रम का सभी अधिकारियों ने लाभ उठाया तथा केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के प्रशिक्षकों ने बहुत ही रोचक व आसान तरीके से सभी विषयों पर चर्चा की।

**इनके अतिरिक्त हिंदी की प्रगति के लिए संस्थान में अनेक गतिविधियाँ आयोजित की गई, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:**

- संस्थान के सभी वर्गों के अधिकारियों/कर्मचारियों/वैज्ञानिकों के लिए विभिन्न विषयों पर वर्षभर में चार

*संस्थान के निदेशक डा॰ डी॰ के॰ शर्मा हिंदी अनुवाद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के प्रशिक्षाणार्थी को प्रमाण प्रत्र देते हुए*

कार्यशालाएं आयोजित की गई जिनसे बहुत बड़ी संख्या में अधिकारी/कर्मचारी लाभान्वित हुए।

- संस्थान में राजभाषा के प्रयोग की स्थिति की मॉनीटरिंग के लिए गठित समिति ने सभी संभागों/अनुभागों एवं क्षेत्रीय केन्द्रों का निरीक्षण कर संबंधित संभागों/अनुभागों में हिंदी में किये जा रहे कार्य की वास्तविक प्रगति की समीक्षा की।
- हिंदी में प्रकाशन का कार्य भी सुचारू रूप से चल रहा है। संस्थान की वार्षिक रिपोर्ट भी हिंदी में प्रकाशित की जा रही है। संस्थान द्वारा कृषि किरण, लवणता समाचार (छमाही), जैसे नियमित प्रकाशनों के अलावा अनेक तदर्थ प्रकाशन, पैम्फलेट तथा प्रसार बुलेटिन जारी किए जाते हैं।
- संस्थान द्वारा बड़ी संख्या में किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं व तकनीकी अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रतिभागियों को पाठ्यसामग्री भी हिंदी में उपलब्ध कराई जाती है तथा प्रशिक्षण का माध्यम भी हिंदी ही होता है।
- संस्थान के वैज्ञानिकों को हिंदी में शोध पत्र तैयार करने और उनका पॉवर प्वाइंट प्रस्तुतीकरण के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से प्रतियोगिता/संगोष्ठी का आयोजन किया जाता है। जिसमें संस्थान के वैज्ञानिक निर्धारित विषय पर अपने शोध–पत्रों का पावर प्वाइंट प्रस्तुतीकरण करते हैं।
- हिंदी पुस्तकों की खरीद के लिए एक समिति बनाई गई है जो हिंदी पुस्तकालय के लिए पुस्तकें खरीदने की सिफारिश करती है। पुस्तकालय में प्रत्येक वर्ष राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित लक्ष्य के अनुसार पुस्तकें खरीदने का प्रयास किया जा रहा है। संस्थान के पुस्तकालय में उपलब्ध सभी प्रकाशनों की सूची संस्थान की वेबसाइट पर उपलब्ध कराई गई है।
- संस्थान के जिन अधिकारियों और कर्मचारियों को हिंदी में प्रवीणता प्राप्त है उन्हें निदेशक महोदय ने अपना प्रशासनिक काम हिंदी में करने के आदेश दिए हैं। इसके अलावा फार्म इकाई, सम्पदा अनुभाग, सुरक्षा अनुभाग, कार्यशाला, स्थापना अनुभाग, क्रय अनुभाग, लेखा अनुभाग एवं लेखा परीक्षा अनुभाग को शत–प्रतिशत सरकारी काम हिंदी में करने के लिए निर्देशित किया गया है। इसके परिणामस्वरूप रिपोर्टाधीन वर्ष में संस्थान में राजभाषा के प्रयोग में उल्लेखनीय प्रगति हुई है।
- संस्थान को प्राप्त होने वाले सभी हिंदी पत्रों के उत्तर हिंदी में दिए जा रहे हैं, 'क' और 'ख' क्षेत्रों में स्थित सरकारी कार्यालयों के साथ अब 90 प्रतिशत से अधिक पत्र–व्यवहार हिंदी में किया जा रहा है, इन दोनों क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों से प्राप्त अनेक अंग्रेजी पत्रों के उत्तर भी हिंदी में दिए जा रहे हैं। मूल पत्राचार अधिकाधिक हिंदी में करने को बढ़ावा देने के लिए संस्थान के सभी संभागों व केन्द्रों के बीच राजभाषा पत्र–व्यवहार सबसे अधिक हिंदी में करने वाले संभाग/अनुभाग को चल–वैजयंती शील्ड प्रदान की जाती है।
- फाइलों पर हिंदी में टिप्पणियां लिखने में भी बहुत प्रगति हुई है, सेवा–पुस्तिकाओं व सेवा संबंधी अन्य रिकार्डों में अब सभी प्रविष्टियां हिंदी में की जा रही है और राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) का अनुपालन किया जा रहा है। संस्थान में हिंदी को दैनिक प्रशासन में बढ़ावा देने के उद्देश्य से फाइल कवर पर ही हिंदी–अंग्रेजी की प्रासंगिक टिप्पणियां प्रकाशित की गई है।
- संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के हिंदी शब्द ज्ञान को बढ़ाने के उद्देश्य से निदेशक कार्यालय में प्रवेश द्वार पर लगे सूचनापट् पर 'आज का शब्द' शीर्षक के अंतर्गत प्रतिदिन हिंदी का एक शब्द उसके अंग्रेजी समानार्थ के साथ लिखा जाता है ताकि आते–जाते कर्मचारियों की नजर इन पर पड़े और उनके शब्द ज्ञान में वृद्धि हो सके। इसी प्रकार का प्रयोग क्षेत्रीय केन्द्रों पर भी किया जा रहा हैं।
- संस्थान के सभी कम्प्यूटरों में हिंदी में काम करने की सुविधा के लिए सॉफ्टवेयर लगाए जा चुके हैं या उनमें फोन्ट लोड किए जा चुके हैं।

- संस्थान के सभी संभागों/क्षेत्रीय केन्द्रों में संभागीय स्तर पर राजभाषा कार्यान्वयन उप–समिति गठित है जिनकी नियमित रूप से बैठकें आयोजित की जा रही हैं।
- संभागों/अनुभागों/क्षेत्रीय केन्द्रों में संभागीय स्तर पर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में लिए गए निर्णयों को क्रियान्वित करने तथा संभाग एवं हिंदी अनुभाग के बीच संपर्क–सूत्र के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से प्रत्येक संभाग/केन्द्र में राजभाषा नोडल अधिकारी नियुक्त किए गए हैं।
- संस्थान के अनेक अधिकारियों व कर्मचारियों ने करनाल स्थित विभिन्न हिंदी संस्थाओं व भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कई संस्थानों द्वारा देशभर के विभिन्न नगरों में आयोजित हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों आदि में भाग लिया।
- उपरोक्त सभी कार्य संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की देखरेख में किए जाते हैं जो प्रत्येक तीन माह में बैठक आयोजित करके राजभाषा कार्यान्वयन में हुई प्रगति की समीक्षा करती है और हिंदी के उत्तरोतर कार्यान्वयन के लिए निर्णय लेती है। इन बैठकों में प्रत्येक संभाग/इकाई द्वारा हिंदी की प्रगति के संबंध में किए गए अभिनव प्रयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है।
- 5 सितम्बर 2011 को नराकास करनाल द्वारा आयोजित नगर स्तरीय निबंध लेखन प्रतियोगिता में संस्थान के श्री नरेन्द्र कुमार वैद्य, प्रभारी अधिकारी संपदा को प्रथम तथा श्री अनिल कुमार शर्मा तकनीकी अधिकारी को तृतीय स्थान प्राप्त हुआ।

**1 अप्रैल 2011 से 31 मार्च 2012 के दौरान हिंदी में प्रकाशित साहित्य का विवरण**

संस्थान में 5 से भी अधिक निम्नांकित तकनीकी एवं वैज्ञानिक साहित्य का हिंदी में प्रकाशन किया गया जिसमें तकनीकी बुलेटिन, प्रसार फोल्डर तथा पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख शामिल हैं।

- कृषि में लवणीय एवं क्षारीय जल से सिंचाई हेतु तकनीक–आर॰के॰ यादव, एच॰एस॰ जाट, आर॰एस॰ त्रिपाठी एवं डी॰के॰ शर्मा (तकनीकी बुलेटिन)।
- क्षारीय भूमि की जलकृषि हेतु उत्पादक उपयोगिता मत्स्य पालन की दिशा में अभिनव पहल–शरद कुमार सिंह (तकनीकी फोल्डर संख्याः 3/2011)।
- सुधरी ऊसर भूमि में सीधी बिजाई द्वारा धान की खेती–रणबीर सिंह, एस॰के॰ चौधरी, प्रदीप डे, एस॰के॰ शर्मा, पी॰के॰ जोशी, आर॰एस॰ त्रिपाठी एवं डी॰के॰ शर्मा (तकनीकी फोल्डर संख्याः 4/2011)।
- लवण एवं क्षार ग्रसित मृदाओं के लिये गेहूँ की प्रजातियाँ एवं उत्पादन तकनीक–नीरज कुलश्रेष्ठ, एस॰के॰ शर्मा, वाई॰पी॰ सिंह एवं के॰एन॰ सिंह। (तकनीकी फोल्डर संख्याः 5/2011)।
- बहुउद्देशीय कृषि प्रारुप (मॉडल) सीमांत एवं लघु किसानों की आजीविका में टिकाऊपन लाने का एक विकल्प–एच॰एस॰ जाट, एन॰पी॰एस॰ यदुवंशी, आर॰एस॰ त्रिपाठी, ललिता बत्रा, आर॰एस॰ पांडे, पी॰सी॰ शर्मा, एस॰के॰ चौधरी, एस॰के॰ सिंह, आर॰के॰ यादव, एस॰एस॰ कुंडू एन॰एस॰ सिरोही, कपिला शेखावत, अशोक कुमार, गुरबचन सिंह एवं डी॰के॰ शर्मा। (तकनीकी बुलेटिन)।

**– समाप्त –**

जिस काम को करने में डर लगता है,
उसको करने का नाम ही साहस है।

डा. एस.के. गुप्ता भा.कृ.अ.प. सर्वश्रेष्ठ संस्थान का
सरदार पटेल पुरस्कार ग्रहण करते हुए

हिन्दी पखवाड़ा
1 से 14 सितम्बर 2011
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल-132001
हिन्दी पखवाड़ा

19 से 23 सितम्बर 2011
केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो नई दिल्ली के सहयोग से आयोजित
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

हिन्दी पखवाड़ा
1 से 14 सितम्बर 2011

पाँच दिवसीय संक्षिप्त अनुवाद प्रशिक्षण
19 से 23 सितम्बर 2011
केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो नई दिल्ली के सहयोग से
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थ
करनाल-